घड़घड़ाती हुई ट्रेन मन्थर गति से प्लेटफार्म पर आकर रुक गयी।

बेताब हुए मुसाफिरों की धक्कम-धक्का, सामान उठाये, पसीना बहाते कुलियों की भाग-दौड़। रेहड़ी और खोंचे वालों का बढ़ता हुआ शोर देख उमा का जी अकुला उठा। उमस भरी दोपहरी में पसीना पोंछते हुए गाड़ी की इन्तजार में वक्त काटना यों ही भारी होता रहा था, इस पर भी अब इतनी बड़ी भीड़ में इसी गाड़ी में आयी हुई पुष्पा की खोज !

परेशानी और अकुलाहट में लम्बी साँस छोड़ते हुए उसने रूमाल से चेहरा पोंछा। फिर दायाँ हाथ कपाल पर रखे उचककर एक भरपूर नजर जो ट्रेन के डिब्बे पर डाली तो एकदम चौंक पड़ी। ठीक नाक की सेध के सामने थर्ड क्लास के कम्पार्टमेंट की खिड़की में से बाहर की ओर गर्दन निकाले पुष्पा खड़ी थी।

हाँ, यह पुष्पा है। वही गोल-मटोल मासल गर्दन, गोरा, चिकना, भरा-भरा-सा चेहरा, काजल से पुती उभरी-उभरी बड़ी-बड़ी आँखें। काले चिकने बाल। छोटे तंग भाल पर लम्बी-टेढ़ी माँग, और वही बिलकुल वही दोनों ओर गालों पर झूलती हुई साँप-सी बल खाती हुई लटें।

भीड़ का एक रेला इधर से उधर की ओर गुजर गया। इसी बीच पुष्पा की तीखी जोरदार आवाज प्लेटफार्म पर गूँज उठी—"छोले वाले, छोले वाले, ओ भाई छोले वाले !" गला फाड़ती हुई पुष्पा, मासल बाजू लटकाये बेसब्री से हाथ हिला रही थी।

खीज और ग्लानि से उमा का चेहरा तमतमा उठा। कोई और समय होता तो वह इस फूहड़पन से पीछा छुड़ाने के लिए पुष्पा की नजरों से ओझल होती हुई अपनी फर्स्ट क्लास में रिजर्व की हुई बर्थ पर आकर निश्चित हो बैठ जाती। पर अब ? अब समय कुछ और था, परिस्थितियाँ

कुछ और थीं।

अकुलाहट और परेशानी से राहत पाने के लिए उसने आँखें मीच ली, फिर जल्दी से पर्स खोल टिकट निकालती हुई बोली—'मुंशी जी, जल्दी से जाइए और यह टिकट चेंज करवा लाइए। मुझे थर्ड क्लास में जाना है।"

"थर्ड क्लास में···क्या कह रही हैं आप ?"

"जो कह रही हूँ ठीक ही कह रही हूँ। कुली से कहिए, मेरा सामान इस सामने वाले कम्पार्टमेंट में रख दे···"

"मगर···" मुंशी जी ने कहना चाहा कि उमा जाने के उपक्रम में बोल उठी—"न हो सके तो कोई बात नहीं···आप···यहीं मुझे दे जाइएगा···" कहने के साथ ही वह कुली को अपने साथ लिए तेजी से आगे बढ़ गयी।

डिब्बे में दमघोट उमस थी, औरतों की चिख-चिख, बच्चों का रोना-चिल्लाना, बिखरा-छितरा सामान, रुका-रुका-सा रास्ता। भीड़ को चीरती हुई उमा कुली के पीछे-पीछे चल रही थी कि तभी पुष्पा की गरजती हुई आवाज़ आयी, "इस डिब्बे में कोई जगह नहीं···यहाँ सामान रखा तो बाहर फेंक दूंगी। अन्धे कहीं के···" पुष्पा वाक्य पूरा नहीं कर सकी, उमा को देखते ही उसका मुँह खुला का खुला रह गया।

उस धक्कम-धक्का के बीच ही कुली ने बिस्तर नीचे उतारा, चमड़े का सूटकेस सीट के नीचे रखना चाहा तो एक महिला चीख उठी—"अरे-अरे, क्या कर रहे हो, यहाँ तो मेरी पानी वाली सुराही रखी है···" कहने के साथ ही उसने सूटकेस पाँवों के भरपूर जोर से बीच रास्ते की ओर धकेल दिया। कुली को पैसे दे उमा ने सामान पर नजर डाली—उसका नया शानदार होल्डाल शौचालय के दरवाजे के आगे लोट रहा था, उसकी पीठ पर कोई बच्चा बड़े मजे में खड़ा अपने जूतों की करामात दिखा रहा था और बेचारा कांकलेदर का सूटकेस आने-जाने वालों का पायदान बना था।

उमा का मन बेबसी से रोने को हो आया, तभी मुंशी जी लपकते हुए आ पहुँचे और बोले, "टिकट चेंज नहीं हो सका, वक्त थोड़ा था।"

मुंशी जी के हाथ से टिकट ले उमा ने पश्चात्ताप से भरी हुई निगाह उन पर डाली फिर टिकट पर्स मे रख लिया।

भीड़ कुछ कम हो तो सामान भी ठिकाने लगाया जाये—उमा सोचती-सी खड़ी थी। कब ट्रेन चले और कब हवा का झोंका आये, इसी इन्तजार में थी कि देखा, पुष्पा एक हाथ में पूरियाँ और दूसरे में आलू-छोले का दोना सँभाले सीट पर बैठी स्त्री से उलझ रही है—"अरी अब पूरी सीट पर कब्जा किये हो, बच्चे को गोद में लो और मेरी जगह खाली करो।"

उमा को पुष्पा पर अत्यधिक गुस्सा हो आया। मन ही मन खीज उठी, बैठने को जगह नही, और जीभ का चस्का लगा है। इतनी उमस में खाने-पीने की यह हवस ?

"अरी उठती है कि नहीं ?" पुष्पा दोनो हाथों में खाने-पीने का सामान उठाये सीट पर बैठी स्त्री से बोली।

"सँभल कर बात कर, गाड़ी तुम्हारे बाप की नही। इतनी अकड थी तो फर्स्ट क्लास में क्यों नही बैठ गयी ?" उस स्त्री ने हाथ हिलाते आँखें मटकाते हुए कहा। पुष्पा को ताव आ गया, दोनो हाथ उमा की ओर बढ़ाती हुई बोली—"उमा, इसे जरा पकड़ना तो, हाथ रुके देख बड-बड़ करने लगी है।" पुष्पा ने हाथ आगे बढाये कि आलू-छोले की भाजी का रस हाथ की हथेली का बाँध तोड़ वेग से बह निकला। और बहाव गिरा भी किस पर ? दूधिया चिकन की साड़ी पर…।

"कम्बख्त बेवकूफ कही की…सारी साडी का सत्यानाश कर डाला है।"

वह महिला जिसके चेहरे पर भद्रता का लेप चढ़ा था, वह लेप रसवती धारा की फुहार से छिन्न-भिन्न हो गया। तौलिया के छोर से वह साड़ी भी पोंछ रही थी और उसी तेजी मे अपशब्दों का उच्चारण भी कर रही थी। और वह दाग कोई मामूली दाग नही था, असली आलू-छोले की सब्जी का चोखा रग था। तभी तो पुष्पा उस भरी भीड़ मे भी उस स्वाद को चखने से अपनी जीभ को काबू में न रख सकी थी।

"खा लो तुम—खडी-खड़ी ही खा लो, बैठने को जगह तो मिलने

की नही।" पुष्पा उमा से कह रही थी···इधर वह भद्र महिला भी चुप नही थी, रह-रहकर बड़बडा उठती थी ।

"मुझे भूख नही।" उमा ने दोने लिए नही, पर्स उठाये अपने को व्यस्त-सी दिखाती हुई खड़ी रही । निगाह कभी बिस्तर पर डालती और कभी सूटकेस पर।

"मम्मी···हमें भी पूरी दो ।" आवाज सुन उमा चौंक उठी। इस शोर-गुल और भीड़-भाड़ मे उसे कुछ ध्यान में नही आया, अब आवाज सुनी तो पूछा—"दीदी, बच्चे भी साथ मे हैं ? मैंने देखा ही नही था ।"

"देखती कैसे, ऊपर की सीट पर टँगे हुए हैं, नीचे कही जगह मिली ही नही ।"

उमा देखते ही अवाक् रह गयी । पहाड जैसे बिस्तर के साथ सिकुड़ा-सिमटा-सा सुरेश बैठा था और मंजू की गर्दन घुटनों मे लगी थी—आर-पार सामान, बीचोंबीच पिसती-सी मंजू ।

इन सब मुश्किलो के होते हुए भी माँग रही थी, "मम्मी, पूरी हमें भी दो ।"

जैसी पुष्पा वैसे ही बच्चे । उमा गुस्सा पीती हुई भीतर ही भीतर बोल उठी—भाई साहब भी बस ऐसे ही हैं । सीटें बुक करवा दी होती तो कौन-सा घाटा पड जाता । इतना पैसा···इतनी कमाई···फिर भी यह हाल···उमा से रहा नही गया, बोल उठी—"दीदी, इतनी गर्मी में बच्चों को साथ नही लाना चाहिए था ।"

बात सुन पुष्पा भौहें चढ़ाती हुई बोली—"साथ न लाती तो क्या वही पटक आती ? मुझे तो सब ओर से मुसीबत ही मुसीबत है ।"

पुष्पा झल्ला उठी थी—कुछ अपने पर और कुछ ऐसे समय पर और झल्लाती हुई कहे जा रही थी—"ज्योंही खबर सुनी, उसी वक्त उठ खड़े हुए—न आगा देखा न पीछा । मुनीम जी को चाबी दी और उठकर दुकान से चले आये । लाख रोका कि सुबह इकट्ठे ही जायेंगे, पर सुनता कौन ? उन पर तो बस भूत सवार हो रहा था । न कपड़ा-लत्ता उठाया न बिस्तर बाँधा, टैक्सी की और सीधे स्टेशन आ पहुँचे···।"

"भाई साहब क्या रात की गाडी से चले गये थे ?" उमा ने संजीदा

होकर पूछा। पुष्पा मुंह बिचकाती हुई बोली—"गाड़ी से गये हैं या जहाज से—मैं क्या जानूं, मुझसे तो कुछ पूछा ही नहीं। अब तुम्हीं बताओ, बच्चों को साथ न लाती तो क्या करती? इनकी खातिर नौकर के हवाले घर छोड़ आती? इधर नौकर को छुट्टी देनी पड़ी और उधर स्कूल में भी इतलाह नहीं दी। सुबह से पास-पड़ोस वाली आती रहीं, उनसे फुर्सत मिलती तो इनके स्कूल का भी सोचती।" कहने के साथ ही पुष्पा झटका खा गयी। सिर एक ओर जा लगा और आलू-छोले फर्श पर चित'''। गनीमत हुई गिरे फर्श पर ही, किसी की गोद में उछलते या किसी के आंचल में छिपते तो आफत का पारावार नहीं था। खैर, जान बची लाखों पाये'''। हाथ में गयी चीज से निस्तार मिल गया। सँभलना तो एक ओर रहा, पुष्पा लुढ़की भी तो सीट के ऊपर ही लुढ़की। किसी ने बुरा-भला नहीं कहा। चुपचाप जगह बनाने की ढील दे दी।

पुष्पा अकेले नहीं, उमा को भी साथ ले बैठी। ट्रेन जब तक रुकी हुई थी, तिल रखने की जगह नहीं थी, पटरी पर रेल के पहिए क्या फिसले कि झटका खाकर सब लोग सँभल गये। जो खड़े थे वह बैठ गये, जो बैठे थे वह पसर गये। चीख-पुकार और आपाधापी का शोर एकाएक थम गया। रोते हुए बच्चे खामोश हो गये, उमस से घुटती हुई सांसें आजाद हो गयीं।

बाहर से लू का थपेडा आया और तन-मन को ठंडक पहुँचाता पसीना पोंछ गया।

"आह! जान में जान आयी।" झगडालू स्त्री ने मस्ती से झपकती हुई आँखों को उघाड़ते हुए कहा—"पसीने के मारे मेरा तो ब्लाउज़ पीठ से चिपक गया है।" चिकन की दूधिया साड़ी वाली महिला बोली।

'गजब की गर्मी थी, अब जरा चैन मिला है।" खिड़की के पास बैठी दुबली-पतली सांवली-सी लड़की बोल उठी।

उमा ने अभी तक उसे देखा नहीं था, अब जो देखा तो एकाएक पहचानती हुई बोली—"अरी तुम'''!"

"हाँ उमा, तुमने तो मुझे देखा ही नहीं।"

उमा ने ठंडी सांस ली, फिर कहा—"भीड़ बहुत थी सो देखा

नहीं।"

"कहाँ दिल्ली जा रही हो ?"

"हाँ···और तुम ?"

"अम्बाले जा रही हूँ, कुछ दिन वहाँ रहूँगी फिर शिमले जाने का ख्याल है।"

उमा ने सिर हिलाते हुए हामी भरी, कमला कुछ और पूछताछ करे इसके लिए वह तैयार नहीं थी। अभी तक जो शोक, आपा-धापी और शोरगुल में आकर दब गया था उसी की प्रतिक्रिया उसके चेहरे पर व्याप्त हो गयी। पश्चात्ताप की एक भावना उसके तन-मन को झकझोर गयी। इतना सब कुछ हो गया, इतना सब घट गया, इसकी अनुभूति होते ही वह सजग हो गयी। उसने पुष्पा की ओर देखा, उसे यह देख धक्का-सा लगा, पुष्पा का चेहरा भावनाहीन था। शोक और सन्ताप का एक भी लक्षण उसमें दिखायी नहीं दिया। न पुष्पा के व्यवहार में, न उसकी बात-चीत में और न ही उसके हाव-भाव में।

पुष्पा जो पहले थी अब भी वही थी। अपनी सीट के नीचे से एक टोकरी खींच वह उससे पूछ रही थी—"उमा, केला खाओगी ?"

उमा ने क्षोभ और गुस्से से चेहरा दूसरी ओर फेर लिया।

जिस शोक में एक-दूसरे का साथ निबाहना आवश्यक होता है—वह आवश्यकता उसे मूर्खता-सी जान पड़ी।

पुष्पा उस मिट्टी की बनी हुई नहीं थी।

पुष्पा का उस शोक-भरे घर में जाना उसे सर्वथा एक ढोंग-सा जान पड़ा। उसे अपने पति महेश पर भी क्रोध हो आया जो अपने साथ न ले जाकर पुष्पा के साथ आने के लिए छोड़ गये थे।

इससे तो अच्छा था मैं उनके साथ ही चली जाती। माँ जी के अन्तिम दर्शन तो कर लेती !

माँ जी की बात सोचते ही उसका मन रो उठा। अंतर को मथकर रुलाई का आवेग गले तक आकर रुक गया। बहुत यत्न करने पर भी आँखें छलछला आयीं। पुष्पा कहीं देख न ले, इस विचार से उसने चेहरा खिड़की की ओर फेर लिया।

ट्रेन पूरी रफ्तार पर थी। सूखे पेड़, तप-तपकर झुलसे हुए खेतों पर आग बरस रही थी। दूर—क्षितिज में धूल के गुब्बारे उड़ रहे थे। सब ओर वीरानगी और उदासी छा रही थी।

कहीं कोई भूख-प्यास से व्याकुल पक्षी उड़ता हुआ दीख जाता तो कहीं कोई टिटहरी बोल उठती। रेल की पटरी के साथ-साथ कहीं कोई पत्थर का ढेर-सा दिखायी दे जाता, तो बचपन की एक घटना याद आ जाती। वर्तमान की स्थिति उसे पीछे धकेल देती। यही लाइन थी, यही दिल्ली और अमृतसर का रास्ता···गाड़ी इसी तरह पूरी रफ्तार में भाग रही थी। तब यह दोपहरी नहीं, रात का वक्त था। परिवार के सब लोग थे—माँ, पापा, कमल सभी थे। इन सबके बीच दादी जी नहीं थी। दादी जी को सब लोग दिल्ली ही छोड़कर आ रहे थे। माँ उदास थी, पापा रोये थे और कमल कहता था, दादी जी अब कभी नहीं आयेंगी। उन्हें पापा श्मशान भूमि ले गये थे।

कमल की बात उसकी समझ से बाहर थी, फिर भी वह जानती थी, जो लोग श्मशान भूमि मे जाते हैं, वह भगवान के पास ही रहते हैं। लौट कर कभी नहीं आते। तब उस समय भी खिड़की में बैठी वह श्मशान भूमि के विषय मे सोचती रही थी। आखिर वह क्या चीज है, कौन-सी जगह है जहाँ पापा दादी जी को छोड़ आये हैं? एक धुंधला-सा चित्र उसके आगे उभर आता था। ईंट-पत्थरों का चबूतरा, ऊँची आसमान को छूती हुई दीवार या ऊँचे-ऊँचे पहाड़। पहाड़ नहीं वह तो शिमले मे हैं। पापा शिमले नहीं गये···श्मशान भूमि पहाड़ नहीं—दादी जी पहाड़ पर नही चढ़ी···वह तो बहुत कमजोर थी···कमजोर आदमी पहाड़ पर नहीं चढ़ सकता। माँ भी कहती है, पापा भी कहते हैं।

युग बदला, ख्यालो की दीवार ढह गई। सामने जो था वही सत्य था, वही प्रत्यक्ष था। ट्रेन में वह थी, पुष्पा थी—पुष्पा के बच्चे थे और यह सब जा रहे थे उस घर में जिस घर से आज माँ जी की अर्थी उठाई गई होगी। और अब तक लोग श्मशान भूमि से लौट आये होंगे—महेश रोया होगा, और रो रही होगी लता, माँ जी की लाडली लता। महेश की छोटी बहन।

"ओ सुरेश, केला खाओगे—मंजू—अरी सँभल कर बैठ, जंजीर पर से हाथ छूट गया तो नीचे आ पड़ेगी।" पुष्पा लम्बे हाथ किये बच्चों को केले दे रही थी।

"तुम बहन कहाँ जा रही हो?" उमा के साथ बैठी गोरी-पतली महिला ने पूछा।

"दिल्ली जा रही हूँ।" उसने धीरे से कहा।

"वहाँ अपना घर है?"

"जी।"

"माँ का या सास का।"

उमा से उत्तर नहीं दिया गया।

पुष्पा बच्चों को केले थमा सीट पर बैठ चुकी थी। उस स्त्री का जवाब उसी ने दिया—"क्या पूछती हो बहन? घर जिसका था वह तो रही नहीं—हम दोनों उसी के स्वर्गवास होने की खबर सुन कर जा रही हैं।"

सामने की सीट पर बैठी एक दूसरी महिला का ध्यान भी इसी ओर आकर्षित हुआ। उमा की ओर देखती हुई बोली—"यह बहुत दुःखी जान पड़ती है—इसकी माँ थी वह?"

पुष्पा झट से बोली—"सास और माँ मे फर्क क्या होता है बहिन, इसकी तो माँ भी वही थी और सास भी वही।"

"उमा को दुःखी हालत में भी पुष्पा पर रोष हो आया। पुष्पा द्वारा अपनी दयनीय हालत होते देख, उसे अपने प्रति अपमान-सा महसूस होने लगा। मगर पुष्पा भावनाहीन थी। उमा की इस नाजुक प्रकृति से सर्वथा अनभिज्ञ।

"इसकी माँ को गुजरे तो बरसों हो गये हैं और सास कल ही चल बसी···आज संस्कार भी हो गया होगा। क्या करें बहन—दूर का मामला ठहरा, वरना अन्तिम समय तो बहुओं का होना जरूरी होता है—फूल-टीका लगवाने की रस्म भी न हो सकी।" पुष्पा ने अगल-बगल देखा, फिर समझदारी का भाव दर्शाती हुई बोली—"हमारे यहाँ सास के मरने पर बहू के मायके की ओर से फूल-टीका लगाया जाता है। वह सास बड़ी

भाग्यवान समझी जाती है, जिसके मरने पर लड़के के ससुराल वाले फूल चढ़ाते हैं।"

उमा का जी चाहा वह इस पुष्पा के पास से उठ जाये। तभी एक स्त्री ने पूछा—"तुम दोनों देवरानी-जेठानी हो क्या ?"

पुष्पा झट से बोली—"हाँ, देवरानी-जेठानी भी और बहिनें भी। मैं बड़ी हूँ और यह छोटी है।"

एक पारखी की नजर से देखती हुई चिकन की उजली साड़ी वाली ठोड़ी हिलाती हुई बोली—"जेठानी तो तुम लगती ही हो पर बहन नही—दूर-दराज की बहन तो मान सकती हूँ—पर सगी नही।"

पुष्पा पस्त नही हुई। लज्जा का भी कोई भाव चेहरे पर नही आया। बात असाधारण समझी ही नही। इतनी तीव्र बुद्धि होती तो झट से उस व्यंग्य को समझ जाती। भावुक नही यह भी अच्छा ही है, वरना व्यंग्य की आड़ ले ईर्ष्या के भाव सहज ही में उगल देती। इन सब बातों से अनभिज्ञ पुष्पा हँसती हुई बोली—"सगी नही है, पर प्यार सगों से भी बढकर है। दोनों ओर से मैं बड़ी हूँ। मेरे पिता जी इसके तायाजी हैं, और मेरे मालिक इसके जेठ जी।···क्यों उमा—बड़ी हूँ न तुमसे ?"

"हाँ दीदी, यह भी कोई पूछने की बात है !" कहने के साथ ही वह धीरे से मुस्कुरा दी।

पुष्पा ने एकाएक पूछा—"अरी महेश भी इसी गाडी से जा रहा है न ?"

उमा मन ही मन झुंझला उठी। इतनी देर से बैठी है—पूछा तक नहीं···अब कहती है, महेश इसी गाड़ी में है न ?

अपने को संयत रखते हुए वह कह उठी—"वह होते तो मैं यहाँ आ बैठती !" अचानक ही उसके मुँह से निकल गया। फिर भूल सुधारने के आशय से कहा—"इन बच्चों को वह अपने साथ न बिठला लेते। नहीं दीदी, वह इस गाड़ी में नही। सुबह-सवेरे कार में चले गये थे। रात को देर से लौटे थे—पता ही नही था। घर आये तो नौकर से यह सब मालूम हुआ।"

"तो तुम्हें यह खबर देर से मिली थी ?"

"हाँ, हम डिनर पर गये हुए थे। लौटे तो तब तक गाडी का वक्त निकल चुका था।"

"तुम महेश के साथ चली जाती।"

"कैसे चली जाती ? भाई साहब ने जालन्धर स्टेशन पर से ही फोन कर दिया था कि आप आज दोपहर की गाड़ी से आ रही हैं। इसलिए मुझे आपके साथ आना है।"

"हूँ···" पुष्पा ने अभिमान व्यक्त किया। उसे यह जान कर प्रसन्नता हुई कि उमा मेरे ही कारण रुक गई थी। उसे अपने पति नरेश पर भी मान हो आया, जो उसकी स्थिति को समझता है, उसके पद का सम्मान करता है। उसने गहराई से सोचा—

उमा महेश के साथ कार में चली जाती तो उससे पहले ही दिल्ली पहुँच जाती।

और तो और, लोग भी सब कहते—देखा, छोटी बहू पहुँच गई और बड़ी नही आई!

अपने को उमा कुछ भी समझे पर जेठानी जेठानी ही है, बड़ी बड़ी ही है। यह सोचकर वह भीतर-ही-भीतर मुस्कुरा दी, पर मुस्कराहट छिपी नही, वह अनजाने ही होंटों पर आकर बिखर गई। और उधर उमा से यह सब छिपा नही रहा। वह सब हाव-भाव देख रही थी।

ट्रेन की रफ्तार धीमी-से-धीमी होती जा रही थी और डिब्बे में हल-चल-सी हो रही थी। कुछ स्त्रियाँ सामान इकट्ठा कर रही थी और कुछ अपने बच्चों को जूते पहना रही थी।

खिड़की के पास बैठी हुई स्त्री ने अपनी गोद में सोये हुए बच्चे को उठा लिया, और उसे पुचकारते हुए बोली—"पप्पू उठो···देखो! तुम्हारे मामू आ रहे हैं!" बच्चा नींद मे था, ऊँ-ऊँ करके फिर सो गया। माँ गाल पर चपत लगाते हुए बोलती गई—"उठो पप्पू···चलो हाथ-मुंह धो लो, छी, गन्दे कहीं के, चेहरा कितना गन्दा कर रखा है। तुम्हारे मामू देखेंगे तो क्या कहेंगे!"

बच्चा अब भी सो रहा था, वह उसी तरह उसे गोद मे उठाये साथ

वाली से बोली—"बहन, कुछ पानी है···जरा तौलिया भिगोना था···बच्चे का मुँह साफ करना है जरा।"

"सुराही में पानी नही रहा। लुधियाना आ रहा है, वहीं स्टेशन पर उतर कर मुँह धो लेना।"

उस स्त्री से रहा नही गया, तौलिये का छोर मुँह मे डाला, फिर उस गीले छोर से बच्चे का मुँह साफ करने लगी।

यह देख उमा ने घृणा से मुँह फेर लिया। चिकन की साडी वाली भी देख रही थी। मुँह बिचकाती हुई बोली—"थूक से बच्चे का मुँह साफ कर रही हो? पढी-लिखी हो या गँवार?"

बच्चे की माँ का चेहरा फक हो गया। फिर भी बोल उठी—"बाथ-रूम तक जाने का तो रास्ता ही नहीं रहा। मुँह धोने के लिए पानी कहाँ से लूँ?"

तभी पुष्पा पूछ उठी—"उमा, तुम्हारे पर्स में कंघी-शीशा तो होगा ही···लाओ जरा बाल ठीक कर लूँ।" उमा ने आनाकानी नही की। पर्स खोल कघी उसके हाथ में दे दी। पुष्पा ने बाल खोले और दही की एक खट्टी-सी बास चारों ओर फैल गई।

गाड़ी प्लेटफार्म मे दाखिल हो चुकी थी। पुष्पा ने जूडा बांधा, फिर बँधे हुए जूड़े को ढीला कर दिया। दो जुल्फें बल खाती हुई चेहरे पर लहरा उठी।

"कोल्डक्रीम है या वैनशिंग···"

"कोई भी नही।"

शीशे में मुँह देखती हुई पुष्पा जूड़े के पिन से काजल के डोरे खीच रही थी···। ऊपर से सुरेश चिल्ला रहा था—"मम्मी, हमें नीचे उतारो।"

"ठहर सब्र कर।"

"मम्मी, मुझे प्यास लगी है।" मंजू कुलबुलाई।

"मिल जायेगा पानी भी।"

"मम्मी, मुझे नीचे उतारो। मैंने बाथरूम जाना है।"

पुष्पा ने आव देखा न ताव, हाथ में लिया हुआ शीशा सीट पर फेंका

और तेजी से सुरेश को खीच कर नीचे उतारा। फिर उसका कान उमेठती हुई बोली—"बदजात, घड़ी-भर भी शान्ति से बैठने नही देता।"

"बच्चो को क्यों डाँटती हो दीदी, इन बिचारों ने क्या बिगाड़ा है !" उमा ने सुरेश की बाँह पकडते हुए अपने पास खीच लिया।

"चाची जी, हमे प्यास लगी है।" मंजू रोनी आवाज मे बोली। उमा ने बडे आराम से मंजू को उतारा तो पुष्पा हड़बड़ाती हुई बोली—"यह क्या, इसे भी नीचे उतार लिया है ! देख तो रही हो—सामान से लदी हुई औरतें इसी डिब्बे मे घुसी आ रही हैं।"

"मैं ऊपर नही बैठूंगी।" मंजू उमा के पास सरकती हुई बोली।

"ऊपर नही बैठोगी तो क्या मेरे सिर पर बैठोगी ? यहां जगह है कहाँ ?" पुष्पा गुस्से से गुर्रा उठी।

"यह लो बहिन, यह जगह है, खामख्वाह मे बच्चों पर बिगड़ रही हो।" चिकन की साडी वाली महिला अपना अटैची केस उठाती हुई बोली —"मैं तो मर्दाने कम्पार्टमेंट में जा रही हूँ। यहाँ की चिख-चिख से तो सिर-दर्द हो गया है।"

"लाओ यह अटैची मुझे दे दो—और जल्दी करो···वक्त थोडा है।"

आने वाले पुरुष की ओर उमा ने देखा और सोचा, यह शायद इसका पति है। उसके चेहरे पर सौजन्यता झलक रही थी। खूब बढिया मलमल का कुर्ता, दूध-सा सफेद पायजामा। सुनहरी फ्रेम की शानदार घड़ी कलाई पर बँधी थी। अटैची केस उठा, पत्नी का हाथ थामे वह वहाँ से जा रहा था।

पुष्पा बोली—"इस एक औरत ने दो जनों के बराबर की सीट पर कब्जा किया हुआ था। देखो तो सही, बच्चे भी बैठ गये और मैं भी आराम से बैठी हूँ।"

पहले की बैठी सभी औरतें उठ गई थी। अम्बाला जाने वाली लड़की भी उतर गई थी।

उमा ने ध्यान से देखा, वह लडकी कमला प्लेटफार्म पर जिस लड़के के साथ जा रही है, वह लडका वही कैप्टन वोहरा ही है। इसी कैप्टन को लेकर क्लब में कमला के विषय में बहुत बड़ा स्केण्डल खड़ा हो गया था।

लोग कहते थे, कमला की अपने पति से अनबन इसीलिए हुई है और इसीलिए कैप्टन वोहरा जालन्धर छोड़ अम्बाला चला गया है ।

तो क्या कमला अपने पति से अलग हो गयी है ? अम्बाला में कुछ दिन ठहरना, फिर शिमले जाने का प्रोग्राम ?

उमा खिड़की में से कमला को देख रही थी। कैप्टन वोहरा के साथ सटी-सटी-सी कमला स्टाल के पास खड़ी कोका कोला पी रही थी।

पुष्पा ने ढेर-सा नमकीन खरीदा, तली हुई दाल, बेसन के लच्छे। उमा के हाथ में लिफाफे देती हुई बोली—"वहाँ गर्म-गर्म पकौड़े बन रहे हैं, मैं भागकर ले आती हूँ । तुम जरा बच्चों को पानी-वानी पिलवा दो ।

खिड़की छोड़ उमा अपनी जगह की ओर पलटी, देखा डिब्बा ठसाठस भर गया है। चुस्त शलवार-कमीज पहने दो लड़कियाँ उसके पास आती हुई बोली—"माफ कीजिएगा, हम जरा इस सीट पर बैठ सकती हैं ?"

उमा इनकार नहीं कर सकी, सुरेश को अपने पास बिठलाती हुई बोली—"सुरेश, जरा इन्हें बैठने दो ।"

"यह बच्चे आपके हैं ?" उनमें से एक ने पूछा ।

उमा सकपका गयी। उसने जल्दी से सुरेश से कहा—"सुरेश, जरा देखना, मम्मी तुम्हारी आ रही हैं कि नहीं ?"

अब उस लड़की को अपनी गलती का एहसास हुआ। क्षमायाचना के स्वर में बोली —"माफ कीजिएगा, मैं समझी थी···"

उमा मुस्कुरा दी—"कोई बात नहीं, एक तरह से यह अपने ही बच्चे हैं, मेरी जेठानी के बच्चे हैं।"

दूसरी ने झट से कहा—"तभी मैं भी सोच रही थी कि आप इतनी आयु की मालूम तो नहीं होती···"

उमा ने मुस्कुराकर उसकी ओर देखा, फिर हँसते हुए बोली—"आप दोनों शायद दिल्ली जा रही हैं ?"

"जी ! हम लोग वहीं रहते हैं ।" हल्के नीले रंग की चुस्त पोशाक वाली बोली ।

तभी गार्ड ने सीटी दी, सुरेश घबराकर बोल उठा—"चाची, मम्मी नहीं आयी !"
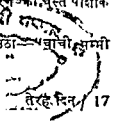
उमा आशंकित हो उठी—गाड़ी चलने वाली है और पुष्पा अभी तक नही आयी ! उसने खिड़की मे से देखा—पुष्पा बौखलायी-सी भागी चली आ रही थी ।

उमा को एकाएक हँसी आ गयी । भागती हुई पुष्पा का मँझोला कद और थुलथुला शरीर बुरी तरह से हिल रहा था ।

कम्पार्टमेंट में पहुँची तो वह हांफ रही थी । उसने दोनों लिफाफे उमा के हाथ मे थमा दिये, फिर साड़ी के पल्ले से पसीना पोंछती हुई बोली—"पकौड़े वाले के पास बड़ी भीड़ थी । बड़ी मुश्किल से ले आयी हूँ···"

"ऐसी भी क्या जरूरत थी, पकौड़े न खाये जाते तो क्या हो जाता ? गाडी चल पड़ती तो मुसीबत हो जाती ।"

उमा के हाथ से बच्चों ने लिफाफे ले लिये थे और वह बड़े मजे से पोदीने की चटनी के साथ पकौड़े खाने लगे थे । पुष्पा गुस्से से गुर्रा उठी—"कम्बख्त खाने पर टूट ही पड़े हैं, यह सब तुम लोगों के लिए नही लायी ।" लिफाफा उनके आगे से उठाती हुई पुष्पा उमा से बोली—"ले रख इन्हें, ये चटोरे तो सब उड़ा जायेंगे ।"

"खाने दो दीदी, बच्चे ही तो हैं ।" उमा ने कहा ।

तभी उमा की नजर सामने की सीट पर गयी । दोनो लड़कियाँ वहाँ नही थी । वह जरा हटकर अपना सामान ठीक कर रही थीं ।

"हैलो आंटी !"

"अरे तुम शकुन···"

"माला भी आयी है···" पुष्पा चहक उठी थी, फिर अपनी देवरानी उमा की ओर इशारा करती हुई बोली—"शकुन, यह मेरी बहिन उमा है ।"

शकुन ने आश्चर्य से उमा की ओर देखा । फिर पूछा पुष्पा से—"बहिन हैं या देवरानी ? यह बच्चे तो इन्हें चाची कह रहे थे ।"

"हाँ शकुन, तुम ठीक कहती हो, उमा मेरी बहिन भी है और देवरानी भी । बच्चो को दादी ने मौसी नही कहने दिया । चाची ही कहलवाया है ।"

शकुन और माला अपनी-अपनी सीट पर बैठ चुकी थी और दोनों

ने पत्रिकाएँ उठा ली थी।

पुष्पा लिफाफे में से कुछ नमकीन निकालती हुई बोली—"शकुन, लो कुछ खाओ।"

"नहीं आंटी, अभी-अभी खाना खाकर ही चली थी।"

"अभी-अभी का मतलब अमृतसर से खाकर ही चली होगी?"

"नही, हम अमृतसर से नही, यही लुधियाना से ही आयी है। अमृतसर से हम दोनों परसों ही आ गयी थी। लुधियाना में हमारे छोटे मामाजी रहते है न—वही हमें ले आये थे।"

"अच्छा यह बात है···मैं समझी थी तुम लोग अमृतसर से आ रही हो और अभी तक शायद किसी दूसरे डिब्बे में थी!"

पुष्पा ने चटनी लगाकर पकौडी खायी, फिर हाथ दालमोंठ पर साफ किये। बच्चे जरा-सा लेकर चुप रह गये थे। इधर उमा ने भी मन रखने के लिए थोडी दालमोंठ ले ली थी। पकौडी के लिए कह दिया था—"इसे खाने के बाद प्यास बहुत लगती है दीदी, मैं नही खाऊँगी।"

गाडी पूरी रफ्तार पर थी। फिर भी पुष्पा का बदन पसीना-पसीना हो रहा था। उमा देख रही थी—पुष्पा और उस नायलोन की साड़ी वाली मोटी महिला के अतिरिक्त सभी के बदन सूखे थे।

"बहन, कुछ पानी होगा? मेरी तो थर्मस मे बूँद भी पानी नही रहा—इन बच्चों ने पी डाला है।" पुष्पा गिलास पकड़े उस मोटी महिला से पूछ रही थी।

"पानी तो इस सुराही में भी कम है, मैं तो खुद भी नही पी रही।"

उसका टके-सा जवाब सुन पुष्पा ने मुँह बिचकाते हुए कहा—"पानी ही तो है—दूध तो नही···।"

उस महिला ने सुना नही, सुन लेती तो अच्छा-खासा तमाशा बन जाता। उमा ने इसी मे गनीमत समझी। पुष्पा का ध्यान दूसरी ओर खीचने के लिए धीरे से पूछा—"इन लड़कियों को कैसे जानती हो दीदी?"

"ओह! यह? यह कहना तो मैं भूल ही गयी। अरी शकुन सुन तो, अरी पढना-पढाना तो दिल्ली जाकर करना, छोड़ यह किताब-विताब।

पहले बता, तुम्हारे ससुराल वाले कैसे हैं ? उस दिन तो भई खूब धूम-धाम से आये थे। बड़ी शान है उनकी।"

शकुन ने जवाब नहीं दिया। हल्के से मुस्करा दी। पुष्पा ने उमा की ओर देखते हुए कहा—"जानती हो, यह मेरी बड़ी भाभी लाज की भतीजी है। यह बड़ी है और माला छोटी। इसका पूरा नाम मालती है और शकुन का शकुन्तला।"

"अच्छा तो भाभी जी की यह भतीजियाँ हैं!" उमा ने शकुन और माला की ओर प्रसन्नता-भरी नजरों से देखते हुए कहा।

पुष्पा बोली—"शकुन की मंगनी हुई है। अमृतसर के बहुत बड़े मिल मालिक हैं। बम्बई में भी खूब कारोबार चलता है। शकुन इसी मंगनी के सिलसिले में ही अमृतसर आई थी।"

उमा ने प्रशंसा-भरी नजरों से शकुन की ओर देखा। शकुन धीरे से मुस्करा दी।

पुष्पा ने आगे कहा—"उमा, क्या बताऊँ तुम्हें, इसके ससुराल वाले बहुत अमीर लोग हैं। मंगनी पर इसे हीरे का सैट पहनाया है। खाली गले और कानों तक ही नहीं, दोनों कलाइयों में चूड़ियाँ भी पहना गये हैं। क्यों शकुन, कितनी चूड़ियाँ थी ?"

"चूड़ियाँ तो आंटी चार थी। पर साथ में एक ब्रेसलेट भी था।"

"ओह याद आया, ब्रेसलेट और अँगूठी तो लड़के ने पहनाई थी।" फिर सोचते हुए पूछा—"ब्रेसलेट तो खूब कीमती होगा—कितने का होगा भला ?"

"मालूम नहीं आंटी!"

अब के माला बोली—"परसों स्टेशन पर वे लोग आये थे, तो भी ढेर से रुपये वगैरा दे गये थे। बहुत-सा सामान तो मम्मी ने लौटा ही दिया था।"

"लौटा क्यों दिया था ?" पुष्पा ने माथे पर सलवटें डालते हुए कहा।

शकुन बोली—"मम्मी को यह सब पसन्द नहीं। पापा लेना नहीं चाहते थे, पर वे लोग जबर्दस्ती ही दे गये।"

उमा की नजर शकुन की उँगली में पड़ी अँगूठी पर गई—खूब बड़े-बड़े सात हीरे जड़े थे। वह मन ही मन अनुमान लगाने लगी थी, इतने बड़े-बड़े हीरे तो आजकल बहुत कम देखने को मिलते हैं। कुछ नही तो केवल अँगूठी ही दस-बारह हजार की जरूर होगी।

शकुन अपने बालों पर हाथ फेर रही थी। खुली खिड़की से धूप ठीक उसी सेंध पर पड़ रही थी। शकुन की अँगूठी से हल्की नीली और सतरंगी रोशनी की धाराएँ फूट रही थी।

पुष्पा माला की ओर देखती हुई कह रही थी, "अब तुम्हारी बारी है। क्यों ठीक कह रही हूँ न ?"

माला झट से बोल उठी—"नहीं आंटी।"

"नही, वह क्यो ?"

"मैंने शादी नही करनी। मम्मी और पापा को कह दिया है।"

"यह डाक्टर बनेगी, और उमर-भर लोगों की सेवा करेगी।" शकुन ने हँसते हुए कहा।

पुष्पा बोली—"अब कौन-सी क्लास में पढ़ रही हो ?"

"क्लास में नही आंटी, यह तो मेडीकल कालेज में है, फर्स्ट इयर में है।"

"अच्छा—और तुम—तुम कौन से कॉलेज में हो ?"

"मेरा तो एम० ए० फाइनल है।"

"एम० ए० में क्या रखा है शकुन ! अब पढ़ाई वगैरा का फायदा ही क्या ? सर्दियों में तो ब्याह भी हो जायेगा।"

"नही आंटी, शादी एम० ए० के बाद होगी। मम्मी और पापा से मैंने पहले से ही कह दिया था।"

"अरी अब तुम्हारे मम्मी-पापा क्या करेंगे ! अब इसका फैसला तो तुम्हारे ससुराल वाले ही करेंगे—मैंने तो सुना है कि शादी सर्दियो मे तय हो चुकी है।" फिर उमा की ओर देखकर बोली—"यह रिश्ता लाज भाभी ने ही ठीक किया है। सब लोग भाभी की तारीफ़ कर रहे थे।"

"अच्छा !" उमा कहकर चुप हो गई। उसे पुष्पा का लम्बा ब्यौरा पसन्द नही आ रहा था। मगर पुष्पा जब बोलने लगती है तब बातों का

कोई अन्त नहीं होता, एक के बाद दूसरी बातें निकलती ही चली आती हैं। उमा की ओर से मुख मोड़ उसने शकुन से पूछा, "मम्मी अभी वहीं हैं क्या?"

"हाँ आंटी—वह तीन-चार दिन बाद आयेंगी। ताई जी ने उन्हें वहीं रोक लिया था। और पापा तो कल चले गये हैं।"

"सुनो, उमा, शकुन के पापा भी बहुत बड़े आदमी हैं। दिल्ली में बहुत बड़ा कारोबार है।"

"अच्छा..."

"फाइनेन्स का काम करते हैं। फाइनेन्स कम्पनी के अलावा दो सिनेमा भी चल रहे हैं। क्यों ठीक है न?" पुष्पा ने शकुन से पूछा।

उत्तर में शकुन ने सिर हिला दिया। उसे यह सब उनकी अमीरी का प्रदर्शन-सा मालूम हो रहा था। वह देख रही थी कि दाहिनी ओर की खिड़की के साथ वाली सीट पर बैठी दोनों औरतें उन्हीं की ओर देख रही हैं और बड़े ध्यान से उनकी बातें सुन रही हैं।

एक आवाज उसे सुनाई दी—"सब पैसे की बात होती है। बहन, अमीरों के सम्बन्ध अमीरों से ही होते हैं।" कहने वाली की सर्द आह शकुन के दिल को छू गयी।

जरूर यह कोई गरीब और दुःखी औरत ही है। कलाइयों में कांच की दो-दो चूड़ियाँ, साधारण छपी हुई वाइल की धोती, पुरानी चप्पल, पुराना ही हैण्डबैग। उधर दूसरी औरतें भी साधारण वेशभूषा में थी, लेकिन चेहरे पर सन्तोष और काली कजरारी आँखों में खुशी की चमक। उसने इधर-उधर निगाह डालते हुए सामने बैठी स्त्री से कहा—"अमीरी का इतना ठाठ फिर भी सफर थर्ड क्लास में! मेरे वह तो मुझसे कहते थे, सेकंड में बैठ जाओ, पर मैंने ही नहीं माना। मैंने कहा कि बस थोड़े दिन की बात है। जब सेकंड क्लास का पास मिल जायेगा, तब फिर उसी में ही तो बैठना है।"

"तुम्हारे पति रेलवे में काम करते हैं क्या?"

"हाँ बहिन, रेलवे में ही हैं। अभी मालगोदाम में हैं। कुछ दिन बाद दूसरा ओहदा मिल जायेगा। तब पास भी सेकंड क्लास का मिलेगा।

इनका एक दोस्त है, उसे सेकंड क्लास का पास मिलता है। वह कह रहा था कि मेरे पास पर तुम चली जाओ, पर मुझे यह अच्छा नही लगा। रास्ते मे टिकट चेकर पूछता तो मैं क्या कहती कि मैं किसकी बीवी हूँ ?"

कहने के साथ ही उसने भौंहें सिकोड़ ली। फिर धीरे से बोली—"आदमी बड़े भोले होते हैं। मेरे वह भी कह रहे थे कि चली जाओ इस पास पर, हर्ज ही क्या है ? पर मैंने कह दिया कि मुझे दूसरे आदमी की पत्नी का लेबल लगाकर सफर नही करना।"

"हाँ, यह बिल्कुल ठीक कहा तुमने। सेकंड क्लास में सफर करने के लिए किसी दूसरे की पत्नी कहलवाना कहाँ की अक्लमन्दी है। आदमी लोग तो मोटी अक्ल के होते हैं। सिर्फ रोब जमाना ही जानते हैं।"

इधर उसके सामने की सीट पर बैठी मोटी थुलथुली औरत शकुन से पूछ रही थी—"अरी यह तुमने अपने जूड़े मे क्या डाल रखा है, आलू या प्याज ?"

उमा ने आश्चर्य से उसकी ओर देखा। शकुन पहले तो सकते में आ गई, फिर अपने जूड़े पर हाथ फेरती हुई बोली—"आप भी कैसी बातें करती हैं, कही जूड़े में आलू-प्याज भी रखे जाते हैं ?"

माला तमककर बोली—"इन्होंने सिर के बाल नही पेड़ पर टँगे चिड़ियों का घोसला समझ रखा है ?"

महिला हँसते हुए बोली—"घोंसला होता तो चिड़ियो के अंडे रहते न कि आलू-प्याज होते···"

शकुन की हँसी फूट पडी, पुष्पा भी जोरो से खिलखिला पडी। उसी खिलखिलाहट में बोली—"शुक्र करो शकुन कि आलू-प्याज का ही नाम लिया है।" पुष्पा कुछ आगे कहती कि वह महिला बोल उठी—"आप तो सब मजाक ही समझ रही हैं, मैं झूठ नही कहती, ऐसी बात आँखों देखी है तभी पूछ रही हूँ···उस लड़की ने भी बालों का ढंग ऐसा ही बना रखा था। इसी तरह का जूड़ा था। बिल्कुल इसी तरह का।" इस बात के आगे उसने आँखोंदेखी घटना बयान की—

"मेरे पति डाक्टर हैं, दाँतों के डाक्टर। कुछ दिन हुए एक लड़की दाँत दिखलाने मेरे पति के पास आई। मेरे पति ने जैसे ही उसका [illegible]

को झुका मुंह खुलवा दांत देखने लगे कि सिर के नीचे रखी हथेली पर कोई भारी-सी चीज नीचे आ गिरी। वह हड़बड़ा कर नीचे देखने लगे तो लड़की झट से खिसियाकर बोली—जी…जी…कुछ नहीं, आलू है…।"

महिला जिस नाटकीय भाव से यह बयान कर रही थी उसे देख सभी महिलाएँ हँस पड़ीं।

शकुन ने होंठ दबा हँसी भीतर ही रोक ली। मगर मालती से रहा नहीं गया, माथे पर तेवर डालती हुई बोली—"यह सब मनगढ़न्त बातें हैं। बूढ़े लोग छोटों में मीन-मेख निकालते रहते हैं।" उसने उस महिला की ओर तीखी निगाह से देखते हुए कहा—"ऊँचा जूड़ा बनाने की शौकीन लड़कियाँ आलू-प्याज नहीं ढूँढती श्रीमती जी। वे जूड़ों में रखने के लिए नर्म-मुलायम नायलोन के पफ खरीदा करती हैं। यकीन न हो तो यह देखिए।" मालती ने झट से अपना वैनिटी बैग खोला और प्लास्टिक की थैली में रखा सुन्दर काले बालों का बँधाबँधाया जूड़ा निकाला और उसे दिखाती हुई बोली—*"यह देखिए, दूर से क्या हाथ लगा कर देखिए।"*

वह मोटी महिला अवाक-सी उसकी ओर देख रही थी और मालती बोले जा रही थी—"इत्तफाक से कभी मेरे दाँत में दर्द हो और मुझे आपके पति के पास दांत दिखाने के लिए जाने का सौभाग्य मिले, तो मैं तो जूड़े में यही छिपा कर ले जाऊँगी।"

डिब्बे में खामोशी थी, सभी एकाग्रचित्त हो माला की बातें सुन रही थी।

वह महिला अपने को अत्यधिक अपमानित-सा महसूस कर रही थी। कुछ पल वह सुन्न-सी बैठी रही फिर एकाएक उसे न जाने क्या सूझा कि सीट पर से नीचे रखा अटैची केस खोला, फिर उसमें से एक लिफाफा निकालती हुई खड़ी हो गयी। लिफाफा मालती की ओर बढ़ाती हुई बोली—"यह लो, इस पर नाम-पता सब कुछ लिखा हुआ है। मेरे पति के पास जाने का इतना चाव है तो यह साथ लेती जाना, जगह ढूँढने में मुश्किल नहीं होगी।"

बात यहाँ तक बढ़ जायेगी इसका अनुमान न पुष्पा को था और न ही उमा को। शकुन भी यह सब नहीं जानती थी। उन लड़कियों की जिम्मे-

दारी कुछ उन पर भी है, यह समझ पुष्पा बोली—"बहन, आप तो समझदार हैं। यह लड़कियाँ तो नादान है।"

"नादान है, कौन कहता है नादान हैं ? यह तो अव्वल दर्जे की खर्राट हैं। न बड़ों का लिहाज है न छोटों जैसी शरम।"

मालती आवेश मे कुछ कहने ही वाली थी कि उमा ने उसके मुँह के आगे हाथ रखते हुए कहा—"बस, आगे नहीं कहना।"

उमा के कहने मे एक प्रभाव था, एक अपनेपन का आभास था। मालती की आँखें झुक गयी।

उमा अपनी सीट पर आकर बैठ गयी। वह महिला अभी भी बुदबुदा रही थी।

शकुन ने उस ओर से अपने को खीचने के लिए पत्रिका उठा ली और मालती ने भी चेहरा उस ओर से फेर लिया।

डिब्बे मे एकदम खामोशी फैल रही थी। पुष्पा शायद थक-सी गयी थी। इसी से आँखें मूँद सोने का उपक्रम करने लगी। सुरेश सीट की पीठ पर सिर टिकाये सो रहा था और मंजू का सिर माँ की गोद में लुढक रहा था।

ट्रेन पूरी रफ्तार पर थी, छोटे-छोटे स्टेशन लावारिसो की तरह पीछे छूटते जा रहे थे। जैसे गाड़ी के साथ, गाड़ी के मुसाफिरों के साथ उनका कोई सम्बन्ध नही था, कोई उपयोगिता नहीं थी। निरर्थकता का बोध करवाती गाडी भागी जा रही थी—एक निश्चित छोर की ओर, एक सनातन लक्ष्य की ओर।

पुष्पा ने एकाएक आँखें खोल दी और कुछ सोचते हुए उमा से बोली—"पुरुष इन बातों को नहीं समझते। मैंने तो सुबह मुनीम जी से पूछ लिया था कि वह कितना रुपया ले गये हैं।"

उमा ने जवाब नही दिया। पुष्पा रुकी नही, कहती गयी—"पूरे पाँच हजार लेकर गये हैं उमा! पाँच हजार कोई मजाक है भला? मुझे तो लगता है माँ जी के संस्कार से लेकर क्रिया-कर्म की उठाई तक का खर्चा हम लोगों पर पडेगा। आज सुबह-सुबह वहाँ इन बातों का फैसला हो गया होगा। हम दोनो के वहाँ न होने का पूरा फायदा उठाया गया

होगा ।"

"क्या कहती हो दीदी, कोई ब्याह-शादी का मामला है जो खर्च के लिए फैसले किये गये होंगे ?"

"ब्याह-शादी के मामले में फैसले नहीं होते उमा, अपनी-अपनी खुशी की बात होती है। ऐसे मौकों पर हां भी हो जाती है और इनकार भी किया जाता है, पर—इस मामले में—सभी जानते हैं कि मुंह खोलकर कुछ नहीं कहा जा सकता। फिर बात कोई गैर की नहीं अपनी मां की ही है।"

"मां की बात है, फिर भी आप ऐसा सोच रही हैं। बड़े भाई साहब की हालत तो आप जानती ही हैं—मास्टरगीरी करते हुए इतनी उमर बीत गयी, आज तक मां जी को रखा, लता का भार भी सँभाले रहे।"

पुष्पा बात काटते हुए बोली—"मां जी को रखा तो कोई ऐहसान नहीं किया, मां जी के पास जो जमा-जत्था था वह उसी के घर में रहा। हम लोगों ने तो अब तक फूटी कौड़ी भी नहीं देखी।"

"मां जी के पास अब था भी क्या, जो था हम लोगों की ब्याह-शादी में लगा दिया था।"

"यह सब कहने-सुनने की बातें हैं उमा। तुम नहीं जानती। तुम तो पीछे आयी हो, मुझे सब मालूम है कि क्या कुछ था उनके पास और क्या-क्या नहीं था।"

उमा ऊब से भरी हुई बोली—"ऐसे समय में ये बातें अच्छी नहीं लगती दीदी! यह तो सभी जानते हैं कि बड़े भाई साहब ने जो कुछ किया वह किसी दूसरे लड़के ने नहीं किया। मैं आपकी नहीं अपनी ही बात कहती हूँ—सात साल मुझे भी हो गये हैं, शादी के बाद सिर्फ एक बार ही मां जी मेरे पास रही थी—वह भी मुश्किल से महीना-भर—न ही उनका मन लगा था हमारे यहाँ, और न ही हम लोग खुश थे।"

"यह तो अपनी-अपनी सोच की बात है उमा। मां जी जेठानी का रौब मानती थी। हर बात में हाँ मिलाती थी। इसी से वहाँ निभ गई···। हम-तुम न उन पर रौब डाल सकी और न ही खुशामद कर सकी। इसी से गुजारा चला नहीं। कहने वाले तो यही कहते हैं कि जो कुछ किया, बड़े लड़के और बड़ी बहू ने ही किया। यह तो कोई नहीं जानता कि छोटे

लड़के कितना कुछ चोरी-चोरी माँ को भेजते रहे हैं।"

"चोरी क्या भेजते थे दीदी, मुझे तो पता है एक बार इन्होंने कुछ रुपये भाई साहब को माँ जी के लिए भेजे थे और भाई साहब ने वह रुपये लौटा दिये थे—लिखा था, लता और माँ जी के लिए गर्म कपड़े बनवा दिये हैं, अब यह नहीं चाहिए।"

"वह भी एक चाल है। यही रुपये माँ जी को भेजे जाते और माँ जी उनकी हथेली पर रख देती तो गुप-चुप में सब बात रह जाती। चूंकि रुपये उनके नाम भेजे गये इसी से लेने में हिचक आ गई। किसी के आगे सिर नीचा न हो, इस बात को जेठानी भी समझती हैं और जेठ जी भी जानते हैं।"

उमा ने कुछ नहीं कहा। पुष्पा की बात कुछ एक तरह से उसे ठीक ही मालूम हो रही थी। सच ही भाई साहब इन मामलों में कुछ घमण्डी ही हैं। अपना स्वाभिमान रखने के इरादे से दूसरे का अपमान करना खूब जानते हैं। वह रुपये लौटाये भी इसीलिए थे।

इससे पहले क्या वह जानते नहीं थे कि माँ जी को और लता को हम लोग कुछ न कुछ देते ही रहते हैं?

वह सब वह खुद न रखते माँ जी को ही दे देते, मगर नहीं, बात वही थी जिससे उनका स्वाभिमान भी बना रहा और हम भी अपमानित हो गये।

"क्या सोच रही हो?"

"कुछ नहीं।"

"सोचना छोड़ और काम की बात करो, वहाँ तो शायद बात करने का मौका भी न मिले। मैं सोचती हूँ अब किसी न किसी तरह से लता को ठिकाने लगाना चाहिए। जब तक माँ जी थी तब बात कुछ और थी, अब तो उसका रहना-सहना मुश्किल हो जायेगा।"

"हूँ, वह तो करना ही होगा।" स[illegible]-सा उत्तर दे उमा ने ठण्डी सांस ली।

पुष्पा भी उदास होती हुई बोली—"किस्मत की बात है सब, दो चार बात हुई, ब्याह की तैयारी भी हो गई, पर ऐन वक्त पर किया-कराया

बिगड़ गया।" ठण्डी साँस छोड़ पुष्पा झुंझला उठी—"इस लड़की के कुछ ग्रह ही भारी हैं। माँ जी को आखिरी वक्त भी इसी की चिन्ता लगी रही होगी।"

उमा ने कुछ नहीं कहा, उसका मन एक साथ बहुत-सी बातों के बोझ से भारी हो उठा था।

"लता के लिए कोई लड़का मिल जाये तो जल्दी ही निबटारा हो जाये। दहेज के लिए तो कुछ झंझट नहीं होगा, सब बना-बनाया ही रखा होगा। सोनीपत वालों के यहाँ जब ब्याह की तैयारी की थी तब माँ जी ने बताया था कि जेवर आदि सब कुछ पहले से ही रखा है, कपड़े-लत्ते भी बनवा लिए हैं। कुछ चीजें तो उन्होंने मुझे दिखाई थीं—चूड़ियाँ और गले का हार देखा था और क्या कुछ पता नहीं, पर लता से ही मालूम हुआ था कि जेवर कुल मिलाकर तीस-पैंतीस तोला सोने के हैं।"

उमा ने आश्चर्य से पुष्पा की ओर देखा, पुष्पा झट से बोल उठी—"तुम्हें माँ जी ने नहीं बताया था ?" उमा को यह प्रश्न बुरी तरह से खल गया। पुष्पा उसे उस दूरी का आभास बता रही थी जिसकी अनुभूति उमा को रह-रह कर सालती रही थी। जब से माँ जी के चल बसने का समाचार सुना था तभी से उमा तिलमिला रही थी। माँ जी बीमार रहीं, खबर नहीं की। इलाज करवाने के लिए हमारी मदद की जरूरत नहीं समझी। सख्त तकलीफ में भी तार करना ठीक नहीं समझा। और तो और, लता ने भी खत नहीं लिखा। माँ जी कहतीं और वह न लिखती या भाई साहब ही इत्तला न देते यह मुमकिन नहीं था। माँजी ने खुद ही मना कर दिया होगा, माँ जी नहीं चाहती होंगी कि हम लोग उन्हें देखने के लिए आयें…"

उमा को लगा जैसे किसी ने कस कर उसके मुँह पर चाँटा लगा दिया हो। वह हतप्रभ-सी हो उठी। इतना बड़ा बदला, इतनी बड़ी सजा ! पूरे आठ दिन माँ जी अस्पताल में रहीं और हम लोगों को कोई खबर तक नहीं दी…!

उमा का मन छटपटा उठा। विगत दिनों की घटनाएँ साकार हो उठीं। उसके कान अपनी ही कही हुई बातों से झनझना उठे—'मुझसे

यह सब नही हो सकेगा। जब से माँ जी आई है, मेरा कही आना-जाना ही बन्द हो गया है। क्लब गये पूरा हफ्ता होने को आया। एक बार गई थी आपके साथ तो सुबह उठते ही पूछने लगीं—रात को इतनी देर तक बाहर रहना ठीक नही। पुरुष तो क्लबों में जाते ही हैं, मगर औरतो का क्या काम है ?'

फिर और भी कहा याद हो आया। महेश : 'माँजी को हम हर महीने कुछ भेज दिया करेंगे। पर···उनका यहाँ रहना मुझसे बर्दाश्त नही हो सकेगा। यहाँ तो आये दिन व्रत चलते है, रोज कभी एकादशी है तो कभी पूर्णिमा, नित नये-नये उपवास। कही मांस न पके, कही अण्डा न बने ! मुसीबत एक हो तो कोई कुछ कहे भी, यहाँ तो बस झंझट ही झझट है।'

तभी किसी ने जैसे उसके कान उमेठ दिये हो। महेश ने गुस्से मे देखते हुए तीखे स्वर मे कहा था—'तुम माँ जी से तग आ गई हो, मैं जानता हूँ···उन्हें यहाँ बुलाकर मैंने गलती की। मैं आज ही उन्हें भिजवाये देता हूँ···और···याद रखो, आइन्दा से माँ जी यहाँ आने का साहस नही करेंगी।'

उमा से बैठा नही गया। सैकड़ो हथौड़ो की चोट से जैसे उसका मस्तिष्क झनझना उठा हो। इस तरह वह अपने सर पर हाथ रखे उठ खड़ी हुई।

"क्या है, उठ क्यो गई ?"

उमा ने उधर देखा नही—बायी ओर की खिडकी के पास वाली जो सीट खाली पडी थी वही जाकर बैठ गयी।

बाहर अन्धकार फैल रहा था। भागते हुए इजन का काला धुआँ, उसमें छूटती हुई चिंगारियाँ, उडते हुए धुएँ मे छोटे-तीखे कंकर···। किसी तीव्र चुभन से उमा की आँख मुंद गई। उसने चेहरा फेरा नही। साड़ी के आँचल से ही आँख सहलाने लगी।

जो दोष अभी तक अपने मे दिखाई नही दिया था वही पश्चात्ताप बन उसके अन्तर्मन को ममल रहा था। पश्चात्ताप की अनुभूति और उसके द्वारा मिली चोट इस कदर घातक हो सकती है यह वह नही जानती थी। तब भी नहीं जब माँ जी उसके यहाँ से विदा होने लगी थी, और उस समय

भी नही जब जाते समय उन्होने कहा था—'उमा, कोई भूल-चूक हो गई हो मुझसे तो मन में न रखना···' तब वह हल्के से मुस्कुरा दी थी, ऐसे जैसे नादान बच्चे की किसी भूल पर समझदार व्यक्ति डाँटता नही, क्षमा-दान देने के लिए मुस्कुरा देता है।

आँख मे ककर क्या लगा, मन को बोझ से निस्तार पाने का रास्ता मिल गया। गले को हल्के से दबाये वह रुलाई रोकने का प्रयत्न करती रही, जाने क्या था जो एकबारगी बाहर आ जाना चाहता था। मन से विवश तन से अवश वह खिड़की के पास बैठी रही। सँभली तब जब ट्रेन धीमी गति से प्लेटफार्म पर आकर रुक गई।

जल्दी से मुँह पोछ वह बाथरूम की ओर बढ गई।

पुष्पा के बच्चे जाग उठे थे। पुष्पा थर्मस उठा मंजू का हाथ पकडे प्लेटफार्म पर उतर आई थी। हाथ-मुँह धो उमा बाहर आई। उसे देखते ही सुरेश बोला—"चाची, करनाल आ गया है···मम्मी कहती हैं तुम्हारे डैडी की बुआ जी यही रहती है। क्यों चाची जी, आप बुआ जी के पास जायेंगी?"

उमा ने सिर हिला दिया, मन उसका अभी भी भारी था।

प्लेटफार्म छोड पुष्पा आई, लेकिन अकेली नही साथ मे एक लडका भी था, टीन का छोटा-सा बक्सा उठाये। पीछे-पीछे दो औरतें—एक अधेड़ एक बूढी। बूढ़ी का हाथ अधेड़ ने थाम रखा था। थर्मस उमा के हाथ मे दे पुष्पा ने बुढिया का बाजू थामते कहा—"बेजी आई हैं उमा···"

उमा पहचानती नही थी। नाम भर सुन रखा था। माँ जी कहा करती थी—मेरी बड़ी ननद करनाल में अपने लडके के पास रहती है। उनका बड़ा लडका रेलवे मे नौकर है, छोटा दिल्ली में रहता है, पर छोटे के पास नही रहतीं। उसकी बहू से उनकी बनती नही।

"उमा, बेजी को यहाँ बिठला दो, इधर जगह कम है।"

"कौन, छोटी है क्या?"

"हाँ! बेजी, यह महेश की बीबी है। शादी पर तो देखा था आपने।"

उमा की पीठ पर हाथ फेरती हुई बुढ़िया बोली—"आँख से दिखता कम है बहू, रात को तो बिल्कुल अन्धी हो जाती हूँ···इस लड़के को किशन

ने साथ भेजा है, अकेली तो घर के बाहर कदम ही नही निकाला…।"

"आप आराम से बैठ जाइए।" उमा ने आराम मे बेजी को बिठला दिया।

"अम्मा, अब मैं जाऊँ ?" लड़का बुढ़िया के पास आकर उसके कान के पास मुँह ले जाता हुआ बोला।

"अब इसकी क्या जरूरत है बेजी, जाओ बेटे अब घर जाओ।"

"अच्छा…" बुढ़िया ने सोचते हुए कहा—फिर समझाने के ढंग से हाथ हिलाती हुई बोली—"अपने बापू से कहना, क्रिया वाले दिन जरूर पहुँचे…बिरादरी का मुँह दिखावा तो करना ही है।"

वह दूसरी औरत जो बुढ़िया का हाथ थामे डिब्बे में आयी थी, वह पास आती हुई बोली—"बेजी, पछी (खजूर के पत्तों से बनी छोटी-सी टोकरी) के पैसे नहीं दिये, जल्दी से पैसे दे दो। गाडी चलने वाली है।"

बुढ़िया हड़बडा उठी—"अरी वह पछी कहाँ है…मेरे हाथ में तो है ही नही, क्यों रे मदन, तुमने ली थी इससे ?"

"नही अम्मा, मैंने कहाँ ली थी !"

"हाय राम, एक रुपये की टोकरी ली, और कहती है मुझे दी ही नहीं—अंधेर तो देखो। गरीब मार इसी को कहते है।" बेचने वाली ने कहा।

"बक-बक करने की जरूरत नही, उसने टोकरी ली होती तो यहाँ दिखायी दे जाती…टोकरी थी—सुई-तागा तो नही था जो दिखाई नही दे रहा।"

"तू चुप हो जा…बात तुझसे नही तुम्हारी माँ से कर रही हूँ…टोकरी ली है इसने, फिर हाथ पकड़वाये डिब्बे मे ले आयी…यह कहकर कि पैसे बक्से मे हैं वहीं चलकर दूँगी।"

उमा सकते मे आ गयी…बेजी के साथ उसने उस औरत को देखा था, मगर टोकरी उनके हाथ में नही थी…औरत झूठ बोलती है—सरासर झूठ।

"यह झूठ है, टोकरी तुमने इन्हे नही दी। किसी और को बेची होगी।"

"तुम लोगों का सत्यानास हो…यह पैसे बुरे काम में लगें…गरीब

के पैसे मारकर अमीर नहीं बन जाओगे। मेरे तो हाथ हैं···इन हाथों से कमाये थे···इन्ही हाथों से और भी कमा लूंगी···।" औरत बक-झक करती हुई नीचे उतर गयी···गाड़ी छूटने का वक्त देख लड़का भी जाने लगा···तो बेजी बोल उठी—"आठ आने के पैसे इस औरत को दे देना ···चुड़ैल बददुआएँ देती रहेगी।" कहकर उन्होंने दुपट्टे के आँचल में बँधे पैसे निकाले।

"मैं अपने पास से दे दूंगा अम्मा जी—आप फिक्र न करें।" मदन यह कहता हुआ नीचे उतर गया। बेजी बहुत देर तक बड़बड़ाती रही और रह-रहकर टोकरियां बेचने वाली को कोसती रहीं।

पुष्पा बोली—"आजकल इन औरतों को भी हवा लग गयी है। देखा नहीं, स्टेशन पर दुकान लगाये बैठी थी—तरह-तरह के खजूर के पत्तों की बनी टोकरियाँ, मोडे, बक्से, और भी न जाने क्या-क्या था। बनाने वाली भी औरतें हैं, बेचने वाली भी औरतें। एक एक डिब्बे के पास जा-जा कर बेच रही थी। अकेली यही नहीं···दो औरतें और भी थी।"

"हूँ, मैंने देखा नहीं।" उमा ने अन्यमनस्क भाव से कहा। पुष्पा बोली, "पिछली बार मैं इसी स्टेशन से मोढ़े खरीद ले गयी थी। रसोई में रखे रहते हैं···दो इन बच्चों के लिए हैं और एक मेरे लिए। दो साल से चल रहे हैं। अब की नीचे का हिस्सा घिस गया था, सो मैंने टाट लगाकर सिलाई कर दी है।"

"हाँ!" बेजी बोली—"पाकिस्तान के बनने पर इन लोगों ने कई तरह के धन्धे शुरू किये। जिसे सीना-पिरोना आता था, वह घर-घर जाकर सिलाई का काम ले आती थी। जिन्हें सिलाई-कढ़ाई नहीं आती थी वे मोढ़े और टोकरियां बना-बना कर बेचने लगीं।"

फिर कुछ रुककर बोली—"अब तो कढ़ाई के सेण्टर है, यहाँ पर बड़े अच्छे मेजपोश काढती हैं। उस दिन मेरा कृष्ण भी पलंगपोश ले आया था। कौशल्या कह रही थी, बडी अच्छी कढाई की हुई है।"

"कढाई का काम तो मैंने भी करवाना है बेजी! अमृतसर में मशीन की कढाई तो बहुत होती है पर हाथ की कढ़ाई वहाँ से कभी नहीं करवाई। दो-चार साड़ियां कढ़वानी है···।"

"साड़ियाँ भी कौशल्या ने अपनी भरजाई (भाभी) को कढ़वाकर भिजवाई थी ।"

"कढ़ाई का खर्च मालूम हो तो मैं भी कढ़ने को दे दूंगी ।"

"देखे बगैर कढाई का पता नहीं चलता दीदी ।"

"मेरी बहू को बहुत अच्छी पहचान है पुष्पा···तुम उससे कहना, कढ़वा देगी ।"

"न हो तो अमृतसर जाते समय एक दिन यहाँ रह जाना, सेण्टर यहाँ देखती जाना··।"

"अच्छा बेजी···कोशिश करूँगी ।"

"कोशिश नही जरूर आना···मेरे साथ ही आ जाना । क्या हुआ, मैं भी तो तुम्हारी कुछ लगती हूँ ··तुम्हारी सास ने तुम लोगो से मुझे दूर रखा था···नही तो रिश्ता कुछ दूर का तो नही···नरेश-महेश की सगी बुआ हूँ···इन दोनो को पाला-पोसा, गोद मे खिलाया है···अब यही लोग पहचानते ही नही ।"

"यह बात नही बेजी, वह तो कई बार आपको याद कर बैठते हैं ।"

"सिर्फ याद ही करता है···कभी चिट्ठी-पत्री नही लिखी; कभी कोई हाल-चाल नही पूछा···जब तक इनका बाप जिन्दा रहा—तभी तक सब पूछताछ थी । उसके जाने की देर हुई कि घर पराया हो गया ।"

बेजी की आवाज भारी हो आयी थी और चश्मा उतार-उतार कर वह आँखें पोछने लगी थी ।

उमा से बैठा नही गया । वह मन-ही-मन खीज रही थी—'हर आदमी कितना खुदगर्ज है यहाँ । जिसका शोक मनाया जा रहा है उसका कोई दुःख नही ··रोना अपना ही ले बैठी हैं ··भाई नही रहा सो घर में पूछताछ नही रही···अपना ही सिर्फ अपना ही ख्याल !'

"तुम लोगों को तार गया था सास के मरने का ?"

"नही बेजी, टेलीफोन आया था दुकान पर ।"

"और छोटी भी तुम्हारे पास थी ?"

"नहीं, यह जालन्धर थी । महेश सुबह मोटर कार में गया है, इने मेरे साथ आने के लिए रोक गया था ।"

"महेश की वकालत अच्छी चल रही है न ?"

"हाँ बेजी, बहुत अच्छी वकालत है, ईश्वर की दया है। आपके आशीर्वाद से हम दोनो ही सुखी हैं।"

बेजी खुश होकर पुष्पा की पीठ पर हाथ फेरती हुई बोली—"भगवान की दया से सब कुछ है।"

"मेरे भतीजों के पास मेरे भाई की दुकान थी। बरकत क्यों न होती! वह तो सच्चे मोती थे—बड़े ईमानदार, बड़े दयावान। सच कहती हूँ बहू, उनके रहते कभी अपने पल्ले से कपडा नही खरीदा था। गर्मियाँ आती तो पांच-सात धोतियां भिजवा देते। सर्दियां होती तो गर्म सूट का कपड़ा और काश्मीरी चादरें भिजवा देते। तुमसे क्या छिपाऊँ—मेरे पास तो अब भी चिकन का थान पडा है तुम्हारी शादी के वक्त का। इतनी बढ़िया चिकन है कि रेशम भी मात खा जाये।"

"आप साड़ियाँ पहना करती थीं बेजी ?"

'हाँ-हाँ, पहनती थी, सब कुछ पहनती थी। तुम्हारे फूफा के होते तो बहुत पहनती थी, पर अब···अब इस बुढ़ापे में सँभाली नही जाती। अब तो यही सलवार-कमीज ही चलता है। बहुत बार जी हुआ कि चिकन की कमीज बनवाऊँ— पर अब तो बहुत महँगी पडती है।"

उमा अभी तक सुन रही थी, चुपचाप। अब के बोल उठी—"वह चिकन का थान जो रखा है उसी की कमीजें बनवा लीजिए न—वह किस-लिए रखा है ?"

बेजी खिसियानी हँसी हँसती हुई बोली—"अरी वह सँभालकर रखा है, पोते-पोतियो का ब्याह होगा एक-एक साड़ी ले लेंगी। गुलाबी रंग की चिकन है, सफेद होती तो शायद ले भी लेती···अब इस उमर में रंगदार कमीजें क्या अच्छी लगेंगी!"

तीनों कुछ देर के लिए चुप हो गयी। बेजी ने मतलब की बात कही—"सुना है नरेश की दुकान पर कम्बल भी होते हैं—एक कम्बल लेना है—नरेश से कहूँगी। कपड़ा-लत्ता तो पूछा नहीं, कम्बल ही बुआ को ला दो।"

पुष्पा ने उमा की ओर देखा, फिर तिरछी निगाहों मे बेजी को।

बेजी को साथ लाकर बिठला दिया है···मालूम होता तो अनदेखा ही कर देती। मुसीबत को जान-बूझकर मोल लिया है।

पुष्पा के चेहरे का भाव देख उमा ने संतोष की साँस ली। तभी पुष्पा बोल उठी—"आपका छोटा लड़का दिल्ली में है न बेजी?"

"हाँ!" संक्षिप्त-सा उत्तर था।

"सुना है क्राकरी की दुकान है?"

"हाँ···सदर बाजार मे है।"

"अब के आपको साथ ले जाकर कुछ क्राकरी खरीदूँगी—यही कुछ प्याले-प्लेटें, डिनर सैट अच्छा हुआ तो वह भी देखूँगी।"

बेजी बोली नही, चुप बैठी रही।

पुष्पा ने फिर कहा—"आपके साथ होने पर लिहाज हो जायेगा। चीज अच्छी मिल जायेगी।"

"मैं तो वह क्रिया-कर्म होते ही चली आऊँगी, उठाई की रस्म होते ही वहाँ नही रहूँगी। इस बीच वहाँ से निकलना भी नही हो सकेगा। हाँ, मौका मिला तो उससे कह दूँगी।"

पुष्पा का चेहरा लाल हो आया, पर रुकी वह भी नही। धीरे से बोली—"आपको तकलीफ क्या देनी है, हम लोग खुद ही बात कर लेंगे।"

"लता का कुछ बना कि नही?" बेजी पूछ बैठी।

"बनना क्या था?" पुष्पा के स्वर में तलखी थी।

बेजी बोली—"यह लडकी भी अभागी है। पहले बाप मरा, अब माँ भी चल बसी। दो बार हाथ पीले करने का भी मौका आया और दोनों बार मेहदी सूखी ही रह गयी। तुम तो जानती ही हो सब, पहले वाले लड़के ने तो कह दिया था कि लड़की लँगडाकर चलती है। दूसरी बार मालूम नही क्या बात हो गयी थी···तुम्हें कुछ मालूम है क्या?"

पुष्पा चुप—जवाब भी क्या दे! कुछ भी हो, ननद पहले थी, पति की बुआ पीछे। पर उमा से रहा नही गया, तमक कर बोल उठी—"आपकी तो वह भतीजी है बुआ जी—आपको तो उसके बारे मे ऐसी बातें नहीं कहनी चाहिए।"

"लो और सुनो, मैं कौन-सी गैर के सामने कह रही हूँ। तुम लोगों की ननद है मैं भी जानती हूँ। तुमसे ज्यादा उस लडकी का ध्यान रखती हूँ। बच्चे तो मेरे भाई के ही हैं न···सीधी बात पूछी है इसी से बुरी लगी है ?"

"बुरा तो लगना ही था बेजी। आपने जो कह दिया कि लड़की लँगड़ा कर चलती है ! पुष्पा भी बेजी से चिढ़ी हुई थी।"

"लो और सुनो, अरी मैं अपनी ओर से थोड़े ही कह रही हूँ···तुम तो उल्टी ही बात ले रही हो पुष्पा। खैर, न सही, मेरा क्या मतलब है—मैं तो कुछ नही कहूँगी···कुछ नहीं पूछूंगी।"

बात बिगड रही है, गनीमत इसी मे है कि आगे कुछ न बोला जाये, न सफाई देने के लिए न माफी मांगने के ढंग से उमा ने पुष्पा को चुप रह जाने के लिए इशारा कर दिया।

बेजी ने बगल मे दबाये छोटे-से थैले मे से माला निकाल ली थी और आँखें मूंद उसके मनके गिनने लगी थी—सुरेश और मंजू अभी तक चुप थे। बुआ को मनके गिनते देखा तो सुरेश ने माँ से धीरे से पूछा—"बेजी आपको गाली दे रही हैं मम्मी···!"

मंजू पास सरकती हुई बोली—"मम्मी को नही चाची को।"

"नहीं, मम्मी को।"

"नही, चाची को।"

"चुप हो जाओ दोनों—गाली-वाली नही, राम-नाम का जाप कर रही हैं।"

मंजू खिलखिला उठी—फिर हँसी रोक उमा के पास आकर कान के साथ मुँह लगाती हुई बोली—"गुस्से मे राम-नाम नही लिया जाता चाची···बेजी जरूर आपको गाली दे रही है···

"कोई बात नही !" उमा मुस्कुराती हुई बोली। सब अपनी-अपनी जगह पर खामोश थे। लगता था, बातों का जैसे सिलसिला एक ही बिन्दु पर आकर खत्म हो गया है। अब दिल्ली तक पहुँचने के लिए किसी को कुछ नही कहना। कुछ नही सुनना।

पानीपत आया। जरा-सी देर के लिए गाड़ी रुकी। कुछ चढ़े कुछ उतरे। बेजी ने आँखें खोली, पूछा—"कौन-सा स्टेशन है ?" पुष्पा जम्हाई लेती हुई बोली—"पानीपत है बेजी।" बेजी ने फिर से आँखें मूंद ली और पूर्ववत पायली मार होंठो ही होठों मे जप जी का पाठ करने लगी।

उमा ने कलाई पर बँधी घड़ी की ओर देखा और अनुमान लगाया, घर पहुँचते-पहुँचते दस तो बजेंगे ही। ट्रेन पन्द्रह मिनट अक्सर लेट हो जाती है। सुरेश और मंजू खिड़की के पास खड़े थे।

मंजू आँख को मलती हुई चीख उठी—"हाय मम्मी···आँख में ···"

पुष्पा कुछ कहती कि सुरेश चिढाता हुआ बोला—"कोयला पड़ा, अच्छा हुआ। खिड़की के आगे जो खड़ी थी।"

पुष्पा रोती हुई मंजू की बाँह खींचती हुई झल्ला उठी—"सूरत देखो अपनी—सारा मुँह धुएँ से काला कर रखा है। यह फ्राक तो देखो, क्या हाल हो रहा है !" पुष्पा ने जोर से उसके सिर पर थप्पड़ लगा दिया। मंजू जोर से रो पड़ी। इधर सुरेश खिड़की से सटकर खड़ा था—सिर बाहर की ओर निकाले। पीछे छूटती हुई रोशनी के धब्बों को देख रहा था।

पुष्पा गुर्रा उठी—"ओ सुदाई, वहाँ क्या देख रहा है ? इधर आ··· आराम से बैठ···।"

सुरेश ने सुना नही—उसी तरह सिर लटकाये खड़ा रहा।

उमा ने पास जाकर उसे खिडकी से हटाया और कान के साथ मुँह ले जाती हुई बोली—"चुपचाप यहाँ बैठ जाओ, नही तो मंजू की तरह तुम्हें भी मार पडेगी।"

मंजू आँख मलती खडी थी। पुष्पा ने साड़ी का पल्ला मुँह के आगे रख लम्बी-लम्बी सांस लेते हुए गर्म किया। फिर मंजू की आंख पर रखती हुई सुरेश से बोली—"जरा मुँह-हाथ धो आओ, मलेच्छ बने हुए हो।"

उमा ने अपनी साड़ी की ओर देखा···सफेद फुलवाइल की लेस लगी साडी का बुरा हाल था। नीचे की ओर से मैली चीकट से भरी हुई लेस···।

जब से गाड़ी में बैठी हूँ, एक बार भी चेहरा नही देखा···स्टेशन की

जगमगाहट में कैसी लगूँगी ? यह सोच वह जल्दी से उठ खड़ी हुई···अटैची में से तौलिया और साबुन निकाला और सुरेश का हाथ पकड़ बाथरूम की ओर बढ़ गयी।

गाड़ी की रफ्तार सहसा धीमी हुई। फिर सोनीपत आकर गाड़ी रुक गयी।

अब दिल्ली पहुँचने मे थोड़ी ही देर है। पुष्पा का असबाव खुला-खुला और बिखरा-बिखरा-सा हो रहा था। इधर-उधर छोटी-मोटी पोटलियाँ-सी रखी थी। किसी में नमकीन, किसी में मीठा, किसी में टाफियाँ और टूटे-फूटे बिस्कुट। सुरेश की किताबो का बैग बन्द नही था। रस्सी बाँधकर ही काम चला लिया गया था···। उमा ने देखा तो पुष्पा से बोली —"दीदी, सामान तो बडा वैसा-सा है, बाँध-बूँधकर इकट्ठा कर लिया जाये···वरना गिनती करने मे ही दिक्कत हो जायेगी···।"

"हाँ, इन बच्चों ने सब कुछ खोल-खाल दिया है। अरे सुरेश, पहन अपने जूते। जुराबें पहन कर चला था। एक इधर पड़ी है एक उधर लटक रही है। उठा उसे और निकर की जेब मे डाल ले।"

पुष्पा चीजें सहेजती हुई बच्चों पर झल्ला रही थी। सामान ठीक हुआ तो कुछ सोचती हुई बोली—"उमा, यह चूड़ियाँ उतारनी पड़ेंगी क्या ?"

"मैं क्या जानूँ दीदी···!"

"तुमने वहीं घर पर उतार दी थी ?"

"नही दीदी, मैंने तो पहले से यही पहन रखी थी···एक ही है···यह भी उतार दूँ क्या ?"

पुष्पा हड़बड़ा कर बोल उठी—"नहीं-नहीं ···यह पहने रहो···यह मत उतारना, सोहाग की निशानी है। कभी भूलकर भी हाथ खाली न रखना। मैं तो हमेशा इतनी ही पहने रहती हूँ। आठ हैं···छः उतारे दे रही हूँ···लो यह अपने पर्स में रख लो···" चूड़ियाँ देती हुई पुष्पा मुस्कुराती हुई बोली—"बाहरवालो ने क्या कहना है···वही यह देख नही सकेगी।"

इशारा जिसकी ओर था वह उमा जान गयी। जेठानी के प्रति पुष्पा

कभी भी सदय नही हो सकी। जाने-अनजाने द्वेष और ईर्ष्या ही व्यक्त किया करती है। जाने क्या है उसमें जो पुष्पा सहन नही कर सकती ?

उमा को याद आया वह दिन जब पुष्पा के लड़के सुरेश के मुंडन पर सब लोग अमृतसर इकट्ठे हुए थे। माँ जी और लता पहले ही आ गई थी और जेठानी सोहागवती बाद को आई थीं। जेठानी के बच्चे दिल्ली में ही थे। जेठ जी को छुट्टी नही मिली थी। 'जेठ जी का मुंडन पर न आ सकना पुष्पा के लिए वाद-विवाद का कारण बन गया था। जिस किसी के आगे बैठती यही कहती—'जेठ जी तो सीधे आदमी हैं, जेठानी ही उन्हें हमसे दूर रखती है। भतीजे के मुंडन पर आते तो कहीं कुछ खर्च कर बैठते, इसी डर से जेठानी उन्हें वही छोड़ आई है। बहाना बनाते क्या देर लगती है। छुट्टी न मिलने की बात तो सिर्फ एक बहाना है।' यही नही, पुष्पा और कुछ भी कहती थी। उमा को याद है, पुष्पा ने अपनी माँ के आगे कहा था—'जेठानी हमारी खुशहाली देख नहीं सकती। रात-भर गाना-बजाना चलता रहा, पास-पड़ोस वाली गाती रहीं, मगर शाबास है जेठानी जी को, गाना तो क्या, होंठों पर मुस्कुराहट तक नहीं आई।' फिर उसने उमा से भी तो कहा था—'यह इतने बड़े जो लोग आ रहे हैं, यह सब जेठानी की आँखों मे खटक रहे हैं। सोचती होगी, इतना खर्च हम लोग कैसे चला रहे हैं। भला पूछो इससे, कमाई कोई ससुर की तो है नही, अपनी ही किस्मत का दाना है। लोगों से मेल-मुलाकात है। यह तो सब मेरे ही कारण है उमा। उन्हें तो दुकान से दम लेने की भी फुर्सत नही रहती। पूछो इन गली-मोहल्ले वालियों मे, किस तरह दुःख-सुख में हाथ बटाती रही हूँ। यह सब पैसे से ही नहीं होता उमा, इस सबके लिए मीठी जबान भी चाहिए। हिम्मत चाहिए। आज इतना बडा काम इन्ही पड़ोसियों की मदद से हो निबट गया। दस नौकर भी होते तो यह काम आसानी से न होता।' यह सब याद करते हुए उमा को हैरानी हुई थी, मुंडन क्या एक तरह का विवाह ही तो था। पूरे हफ्ते-भर ढोलक बजती रही थी। खाना-पिलाना चलता रहा था। फिर जिस दिन मुंडन संस्कार था उस दिन पंडित के पास वही-खाता उठा मुनीम जी बैठे थे। आने वालों की हाजिरी भरने के साथ-साथ नगद

रुपयों की लिस्ट भी बनती गई थी। नगदी के रुपये पुष्पा के पर्स में जा रहे थे और उपहारों का ढेर ट्रंक में। दोपहर के खाने पर हजार आदमी तो थे ही, शाम को जो रह गये थे वह भी चालीस-पचास से कम नहीं थे। उस रोज पुष्पा कह रही थी—'पाँच हजार रुपया नगद आया है, खेल-खिलौने तो जो हैं सो हैं ही, कपड़े भी इतने आये कि दो साल तक सुरेश के लिए कपड़े खरीदने की जरूरत नहीं पड़ेगी। उमा ने लम्बी साँस ली और मन ही मन कहा था—किस्मत की बात है। पुष्पा की माँ ने भी कोई कसर नहीं छोड़ी थी—साडी के साथ पुष्पा की माँ ने पाँच लड़ी मोतियों की माला और चार-चार सोने की चूड़ियाँ भी दी थीं। सास जी के लिए सिल्क की साडी। लता के लिए स्विस क्रेप का सूट दिया था। पुष्पा कह रही थी —'माँ ने इनके लिए गर्म सूट भी दिया है।' उमा ने गहरी साँस ली फिर पुष्पा की ओर देखा, और तब निगाह बच्चों की ओर डाली। सहसा उमा को लगा, सुरेश और मंजू माँ-बाप के होते हुए भी यतीम-से हैं। ममता की, स्नेह की जो छाप इनके चेहरे पर होनी चाहिए थी उसका सर्वथा अभाव है। बच्चे असन्तोषी और चिडचिडे-से ही हैं। टाँगें काली, चिकने-मीठे धब्बों से मैली और घिनौनी गर्दन देखो—मैली, पसीने से लथपथ···ओह! पुष्पा ने बच्चे पैदा तो किये पर पालने-पोसने का सलीका न सीखा।

पुष्पा हाथ-मुँह धो आई थी। चेहरा खूब उजला-सा लग रहा था। उमा ने गौर से देखा, पुष्पा के चेहरे पर ताजगी है, आँखों मे चंचलता और होंठो पर मुस्कुराहट।

दस बरस पहले भी यही चेहरा खूब उजला और चिकना-चिकना-सा था। यही शोख आँखें, यही मुस्कुराते हुए होंठ। चेहरे पर समय का तनिक भी प्रभाव नहीं पड़ा। बस शरीर ही बेडौल हो गया है।

पुष्पा ने आरगंडी की छपी हुई साड़ी पहन रखी थी, जिस पर अनगिनत सलवटें पड रही थी।

घाघरे की भाँति साड़ी का घेरा फैल रहा था। साडी आवश्यकता से अधिक एडियों से ऊपर उठ आई थी जिससे पुष्पा की पिंडलियाँ तक दिखाई दे रही थीं। उमा ने बेजी की ओर देखा और माना, बेजी शलवार-कुर्ते में कहीं अधिक सुघड़ और सलीकेदार दिखाई दे रही थी। उमा ने

बेजी से कुछ कहना चाहा, पर कुछ सोचकर चुप हो गई।

गाड़ी अब नई दिल्ली स्टेशन के प्लेटफार्म पर आ लगी थी। महेश प्लेटफार्म पर खड़ा था। कुली से सामान उठवा जब वह बाहर आये तो पुष्पा बोली—"घर मे बहुत लोग आये हुए हैं ?"

"हाँ, सभी पहुँच गये हैं। बम्बई से चाचा जी और चाची जी भी आ गये हैं। सुबह प्लेन से आये हैं।"

"उन्हें इत्तला दे दी गई थी ?"

"हाँ, तार दिया गया था।"

बेजी ने माथे पर त्यौरियाँ चढ़ाते हुए कहा—"ऐसी भी क्या जल्दी थी ! हवाई जहाज मे तो पैसे भी बहुत लगे होंगे। आज न पहुँचते, एक-दो दिन बाद ही आ जाते। रेल का किराया तो इससे बहुत कम पड़ता है न ? क्यों महेश, दोनो ही हवाई जहाज पर आये हैं ?"

"जी, बेजी, आये तो हवाई जहाज पर ही हैं। पर उनके आने का तो प्रोग्राम पहले से ही तय हो चुका था। चाचा जी और चाची जी, यहाँ एक लड़के को देखने के लिए आ रहे थे। सीट उनकी पहले से बुक थी—माँ जी की खबर तो बाद को मिली है।"

"यह मोटर किसकी है रे ?"

"अपनी है बेजी।" महेश ने संक्षिप्त-सा उत्तर दिया।

उमा बोली—"यह सुबह-सवेरे ही आ गये थे बेजी।"

घर के निकट आते ही महेश ने कहा—"बेजी ''घर में ग्रन्थ साहेब का पाठ रखवा दिया है सो रोने की जरूरत नही'''माँ जी का कहना था कि घर मे रोना-चिल्लाना न हो।"

सभी लोग भीतर पहुँचे।

घर में शान्ति थी'''एक खामोश सन्नाटा-सा था। आँगन मे बड़ी दरी बिछी थी—थकी-हारी स्त्रियाँ दरी पर हो लेट गई थी—पुरुष बरामदे मे बैठे थे। सोहागवती ने सामान कमरे में रखवा दिया था। फिर पूछा था—"पुष्पा, बच्चे नहायेंगे क्या ? पानी तो टब में है—दो-तीन बाल्टियाँ भी भरी पड़ी हैं—उमा, तुम भी नहा लो'''।"

पुष्पा ने बच्चों को नहलाने नही दिया, हाथ-मुँह पोछ खाने के लिए

बिठला दिया।

उमा नहा चुकी थी। खाने के लिए कहा गया तो बोली—"भूख तो बिल्कुल नहीं है। खाने को मन नहीं, चाय मिल जाये तो ठीक है—सिर भारी-सा हो रहा है।" सोहागवती रसोई में गई, उमा के लिए चाय ले आई और पुष्पा के लिए खाना। खाना पुष्पा से भी खाया नहीं गया, ग्रास मुँह में डालने को थी कि सहसा रुलाई फूट पड़ी। आँखों पर आँचल रखे वह जोर-जोर से रो उठी।

बेजी का बिस्तर चारपाई पर बिछा दिया गया था। वह वही चारपाई पर बैठी थाली में खाना खा रही थी। पुष्पा के रोने की आवाज सुनी तो वहीं से हाथ मटकाती हुई बोली—"अब आधी रात के वक्त यह रोना-धोना अच्छा नहीं लग रहा पुष्पा! पास-पड़ोस वाले सोये हुए हैं। खाना खाओ और चुपचाप सो जाओ। यह काम तो कल भी हो जायेगा।"

पुष्पा की रुलाई एकदम बन्द हो गई। गला तर करने के लिए उसने पानी से भरा गिलास उठाया और गट-गट करके पी गई।

रात को अधिक बात नहीं हुई। लता और सोहाग की लड़की सुनीता ऊपर छत पर सो गई थी। ग्रन्थ साहेब का पाठ गुरुद्वारा के पाठिए पढ़ रहे थे। सुरेश और मंजू को चारपाई पर सुला पुष्पा आँगन में बिछी दरी पर आकर लेट गई थी।

उमा करवटें बदल रही थी। कड़ी जमीन पर सोना भी एक मुसीबत है। नीचे गद्दा था फिर भी लग रहा था जैसे खाली फर्श पर ही लेटी है। उधर पुष्पा खर्राटे भर रही थी। सीधी पसरी-फैली देह, न गम न चिन्ता! बस बेफिक्री और बेपरवाही! मस्त तबीयत भी एक नियामत है। उमा को पुष्पा पर ईर्ष्या हो रही थी। जेठानी जरा दूरी पर लेटी थी—उधर की ओर से करवट ले रखी थी। नीद आ गई हो तो खूब थकान से ही आ गई होगी—वरना , सोने को हो तो खूब थकान से

नीद में सोना

लेटी-लेटी ही उमा सोच रही थी—इस घर में आये छः बरस हो गये। इन छः बरसों में माँ जी दो-तीन बार ही जालन्धर आई थी। वह भी दो-तीन महीने से ज्यादा नही रहीं, और जितने दिन रहती थी, समय-असमय दिल्ली के घर की सोहाग और उसके बच्चों की ही बातें सुनाती रहती थीं। उमा से तब सास का उस घर के साथ लगाव सहन नहीं हो पाता था। बात बीच में छोड़ वह अक्सर उठ आया करती थी। तब जाने-अनजाने अकारण ही एक ईर्ष्या का भाव जेठानी के प्रति उमड़ उठता था। तब वह महेश से कह उठती थी—'जाने कौन-सा सुख है वहाँ जो माँ जी को यहाँ नही मिल रहा? जब देखो उन लोगों की बड़ाई! रहने का कमरा है, टहल-सेवा करने के लिए माई है, खाना खिलाने के लिए नौकर! फिर भी माँ जी खुश नहीं!'

उमा को एकाएक झटका-सा लगा। माँ जी के होते जो अभी तक अप्रत्यक्ष था, गोपनीय था, वही विचार उसके अंतर को मथने लगा था; यह मानकर कि माँ जी वहाँ खुश नही थीं। प्रसन्न रहने के लिए आराम ही तो सब कुछ नही होता। माना कि हमारे यहाँ माँ जी को सभी सुविधाएँ थी, फिर भी उनके चेहरे पर सन्तोष की झलक कभी दिखाई नहीं दी थी। एक लाचारी और खामोशी का भाव ही चेहरे पर दिखाई देता था। सहसा उमा के आगे वह शाम थिरक गई।

घर में खूब चहल-पहल थी। महेश ने बहुत-से लोगों को डिनर पर बुला रखा था। उसकी अपनी सहेलियाँ भी आई हुई थीं। बाहर लॉन में सभी लोग बैठे थे। माँ जी भीतर अपने कमरे में ही थीं। कभी कमरे की खिड़की में से बाहर की ओर झाँक लेती थीं और कभी रसोई में जाकर नौकर से पूछताछ करने लगती थीं—'वह जो नीली साड़ी पहने है वह कौन है, राम? बाहर गाना कौन सुना रहा है? यह जो जोर-जोर से [illegible] रहा है वह क्या तुम्हारे साहेब का दोस्त है?'

उमा को भीतर ही भीतर एक कचोट-सी हुई। रामू से [illegible] के बारे में सुना था, वह पश्चात्ताप बन उसे भीतर-ही-भीतर [illegible]। ओह! पश्चात्ताप की पीड़ा कितनी असहनीय होती है! [illegible] दायक होती है! धुंधले-धुंधले चित्र एक-एक करके [illegible]

उमा एकटक जैसे देखे जा रही थी। चारों ओर सन्नाटा-सा छा रहा था। धुंधली-धुंधली रोशनी मे घर ऊँघ रहा था। उमा ने अपने इर्द-गिर्द देखा, कही कोई आहट नही, कही कोई आवाज नहीं, सिर्फ दो आँखें ही है जो उसकी ओर देखे जा रही हैं। कभी उन आँखों में क्रोध झलक उठता है और कभी उनमे पानी छलछला आता है। फिर एक धीमी करुण आवाज सुनाई देने लगती है—तुम्हें मैंने बड़ा कष्ट दिया है, उमा ? जो भूल-चूक हो गई है उसे मन में न रखना।

हाँ, जालन्धर से विदा होते हुए माँ जी के यह आखिरी शब्द थे—आखिरी शब्द···

गाड़ी में बैठी माँ जी की आँखें छलछला आई थीं। साथ ही प्लेटफार्म पर खड़ी उमा तब यह देखती रही थी। घर से चलते समय महेश ने कहा था—'माँ, मैं तो स्टेशन पर आ नही सकूँगा, एक बहुत बड़े केस का मामला है। उमा तुम्हें स्टेशन पर छोड़ने जायेगी।'

क्या महेश माँ जी को मिलते समय उदास था—नही। उमा ने स्वीकार किया—महेश को माँ जी से विमुख करने की जिम्मेदार वही थी—जब से माँ जी की उसने महेश के आगे शिकायत की थी तभी से महेश उनसे कट कर रहने लगा था। सिर्फ यही नही, उसने साफ-साफ कहा था—'माँ, सुना है तुम यहाँ खुश नही हो'' तुम्हारा जी यहाँ नही लगता तो कोई बात नही। वहाँ भाभी और भइया तुम्हारी खातिर करते हैं और बच्चो में भी मन लगा रहता है। तुम जाना चाहो तो मैं मुंशी जी को कहता हूँ, वह तुम्हें दिल्ली पहुँचा आयेंगे।' माँ जी ने कहा कुछ नही था, केवल देखती रही थी। सिर्फ यही नही और भी अनेक छोटी-छोटी बातें थी।

शाम के वक्त बाहर लॉन में माँ जी होतीं और महेश के साथ बाहर से किसी आये हुए को देखती तो एकदम भाग खड़ी होतीं। उन्हें अपनी उपस्थिति उन लोगों के बीच निरर्थक-सी जान पड़ती थी। जहाँ उमा और महेश एकसाथ बैठे होते तो माँ जी चुपके से वहाँ से खिसक जाती। एकान्त देने के विचार से नही, एक हीन-भावना के वश होकर ही ऐसा होता था। तब जाने-अनजाने उनके चेहरे पर जो भाव व्यक्त हो जाते थे,

उनसे उमा अनभिज्ञ नहीं थी । लेकिन इन सब बातों को समझते हुए भी नासमझ बनी रहती थी । उमा ने सोचा, हीन-भावना से ग्रस्त आदमी अपने बचाव के लिए एक पक्ष का सहारा ले दूसरे पक्ष पर आक्षेप भले ही न करता हो, फिर भी उसके प्रति जो परायेपन के भाव निहित होते हैं वह जाने-अनजाने व्यक्त हो ही जाते हैं ।

यह घर जिसका है इसी पर माँ जी का पूरा-पूरा अधिकार रहा है । यहाँ माँ जी का प्रभाव एक मालकिन की तरह था, एक स्वामिनी की तरह था । यहाँ आने-जाने वाले परिचित भले ही जेठजी और जेठानी के रहे हों, लेकिन आवभगत और आदर-सत्कार का श्रेय हमेशा माँ जी को ही दिया जाता रहा है ।

उमा ने एक उदास नजर चारों ओर डाली । आँगन की इस सामने की दीवार के साथ लगी चारपाई होती थी । सर्दियों में सुबह-सवेरे धूप इसी दीवार पर से उतर आती थी । तब धूप देखते ही माँजी चारपाई पर बैठती थीं और आवाज लगा कर कहती थीं—'सोहाग, अरी साग-तरकारी और चाकू-छुरी यहीं दे दो, मैं यहीं बैठी-बैठी साग काट देती हूँ ।' साग-तरकारी काटने का काम न होता तो पुराने स्वेटर उधेड़ने के लिए ले बैठतीं । उमा को याद है, पिछली बार सर्दियों में जब वह आई थी तो इधर इसी आँगन में धूप में बैठकर माँ जी ने ढेर-सा गोभी और शलजम का मीठा अचार डाला था । पूछा था, 'उमा तुम्हें मीठा अचार पसन्द है न? इसी से इतना सब कर रही हूँ । सोहाग के पास तो अभी है । और देख उमा, यह नीबू का मीठा अचार है । यह महेश को खूब पसन्द है । और इसमें दूसरे नीबू हैं । पुराना हो जाने पर इसकी रंगत काली पड़ जाती है । काला देख फेंकना नहीं । जितना नीबू का अचार पुराना होता है, उतना ही फायदेमन्द होता है ।' आह ! कितने ढेर से अचार ले गई थी ! महेश ने देखते ही कहा था—'यह क्या बोझा उठा लाई हो । बेकार में माँ को कष्ट दिया । इतने अचार खायेगा कौन ?' तब उसने रुआँसी सी होते हुए कहा था—'मैंने नहीं कहा था माँ जी ने जबर्दस्ती ही दे दिये हैं ।' अपनी बात आते ही सास का चेहरा सामने आ गया । ओह, कितनी बड़ी-बड़ी भाव-भरी याद आँखें थीं, ममता से ओतप्रोत—स्नेह से छलछलाती हुई !

जीते जी उन्हें जाना नही, जाना भी तो माना नही। प्रत्यक्ष को मान्यता क्यो नही दी जाती ? अच्छाई और गुणों पर तब शायद दृष्टि स्थिर नही हो पाती। इसी से जब सब कुछ अदृश्य हो जाता है तो स्मृति शून्य का प्रतीक बन विचारों में केन्द्रीभूत हो उठती है। वरना अब है ही क्या ? कही कुछ भी तो नही रहा। जब तक सब था, सोचने-विचारने को कुछ भी नही था। उलझी-सुलझी बातों का आदान-प्रदान होता था। कुछ खटका, कुछ बुरा लगा, दो टूक जवाब न बना तो हाव-भाव से ही सब व्यक्त कर दिया जाता था। फिर बात आई-गई हो जाती थी। मन में जो जमकर बैठ जाती ऐसी कोई बात कभी नही थी। सख्ती और तलखी से जो कभी पेश आती, ऐसे स्वभाव की वह थी ही नही।

एकाएक उमा को अपना गला सूखता-सा जान पड़ा। आँगन मे एक ओर घड़ौंची पर पानी का घड़ा रखा देख वह उठ बैठी। गिलास में पानी उँडेलने लगी तो सोहाग उठ बैठी। पूछा—"कौन उमा हो, लगता है तुम्हें नीद नही आई ?"

"हाँ भाभी, बहुत कोशिश की सोने की पर नींद पल-भर के लिए भी नही आई।"

पानी पी गिलास नीचे रखा तो सोहाग ने पास आते हुए कहा—"मेरा कहा मानो, तकिया और चादर ले लो और ऊपर जाकर सो रहो। सुनीता और लता ऊपर ही हैं। पलंग कोई खाली न हो तो भी कोई बात नही, सुनीता या लता के पास ही लेट जाना।"

उमा ने आनाकानी नही की। तकिया उठा धीरे से सीढ़ियों के ऊपर पाँव रखा कि तभी कोई भूली-बिसरी बात याद आ गई—'अरे-अरे यह क्या ! उमा, अरी ऊपर कहाँ जा रही हो ! सीढ़ियाँ नही चढना उमा !'

उमा ने अपनी कोहनी देखी, फिर कलाई पकड़ने की अनुभूति हो आई—'पगली, डाक्टर ने मना कर रखा है, तुम्हें तो पूरा आराम करना चाहिए। कही कोई तकलीफ बढ गई तो···?'

तो ? तो क्या ? उमा भीतर ही भीतर फुसफुसा उठी। सीढियाँ चढ़ते हुए वह सब याद करती गई, जो दो बरस पहले यही इसी घर मे घट गया था।

अवस्था में जो रुदन शेष रह गया होगा, वही अब धीरे-धीरे कराह रहा है।

उमा का मन हुआ, वह लता के पास जाकर लेट जाये और उसे छाती से लगा ले। उसी तरह जब ऐसी ही एक रात में उसे बुआ ने छाती से भींच लिया था। उमा ने ठंडी सांस लेते हुए याद किया, जब माँ ने उसे छोड़ा था तब वह सोलह बरस की थी। पूरे तीन बरस माँ बीमार रही थी। उन तीन बरसो में जीवन और मृत्यु के बीच का संघर्ष वह अच्छी तरह से देख चुकी थी। इसी से माँ के चले जाने पर उसे आश्चर्य नहीं हुआ था। दैव इच्छा मान चुपचाप सह लिया था। पर वह सहना भी कितना कठिन था! नासमझ बन कुछ रो लेती, तो भीतर का दुःख घुल-पुंछ कर साफ हो जाता। उसी तरह जैसे गहरे काले बादलों के बरसने के बाद आकाश खूब साफ हो जाता है, धूप चटखने लगती है, और खुले आसमान पर सितारे चमकने लगते हैं।

लेकिन यहाँ? उमा ने महसूस किया, यहाँ बादल बरसे नहीं। रिम-झिम रिम-झिम करते हुए सिसकते ही रहे हैं। हर बदलते हुए मौसम के साथ-साथ जिन्दगी का रुख बदलता गया। पतझड़ के बाद मधुमास आया तो भी हृदय-रूपी आकाश दुःख के बादलों से आच्छन्न ही रहा। खुशियाँ सितारों की तरह चमक न सकी। बोझ के नीचे ही दबकर रह गई। आह, वह भी कैसी स्थिति थी! कहीं कोई खुशी होती, विवाह-शादी पर कहीं बैण्ड बज रहा होता, तो वह एकदम वहाँ से भाग खड़ी होती थी। कहीं कोई चहल-पहल होती, भीड़-भाड़ और शोर-शराबा होता, तो अपने को नितान्त अकेला ही महसूस करती थी। उमा को याद आया, माँ के जाने के एक बरस बाद ही बुआजी के लड़के की शादी थी। सेहराबन्दी के पश्चात् जब बारात जाने को तैयार हुई तो बैण्ड की आवाज सुनकर एका-एक वहाँ से भागकर कमरे में आ छिपी थी। कमरे में कोई आकर देख न ले इस आशय से वह गुसलखाने में आ गई थी। फिर कितनी ही देर तक वह बन्द गुसलखाने में फफक-फफक कर रोती रही थी। उसे लग रहा था जैसे बैण्डबाजे की आवाज उसके अंतर को बुरी तरह मथ रही है। गले के नीचे हाथ रखे वह जितना ही रुलाई रोकने का प्रयत्न करती थी, रुलाई

उतने ही आवेग से फूट उठती थी। दुःख के उस आवेग में माँ एक आवाज बनकर गूँजती रही थी। वह दुःख जो सन्नाटा बनकर खामोश हो गया था, वह बैण्ड की आवाज से चीत्कार कर उठा था। ओह, तब उसे लग रहा था जैसे शहनाई के स्वर मातम की धुन बन चारों ओर व्याप्त हो रहे हैं!

नहीं, अब कुछ नहीं सोचना, कुछ भी याद नहीं करना। इतनी भावुकता अच्छी नहीं। उसने सोने की कोशिश की।

आंटी···उठिए चाय पी लीजिए···।

"कौन?" उमा हड़बड़ाकर उठ बैठी। देखा, सुनीता चाय का गिलास उठाये उसके पास खड़ी है।

यह क्या, इतनी देर हो गयी? धूप दीवारों की मुंडेर से झांक रही थी, उस ओर देख उमा झेंप गयी। अचकचाते हुए बोली—"रात बड़ी देर तक नींद नहीं आयी। न मालूम कब आंख लग गयी।" चारपाई से उमा उठती हुई बोली—"हाथ-मुँह धोकर चाय पिऊँगी। यहाँ तो पानी नहीं होगा?"

"बाथरूम है इधर, आइए, मैं दिखाऊँ। यहाँ छोटी-सी रसोई भी बनवायी है।" सुनीता उमा को बाथरूम दिखाने लगी। उमा ने देखा, बरसाती अब पहले जैसी नहीं, अच्छा-खासा कमरा बना दिया गया है। पूर्व की ओर बड़ी-सी खिड़की है जिसके आगे हैण्डलूम के पर्दे लगे हैं। उसी के दूसरी ओर साथ लगा बाथरूम है। बाहर छत के एक कोने में रसोई की व्यवस्था भी कर दी गयी है।

"यह पापा ने अभी-अभी ही ठीक-ठाक करवाया है। माँ कहती हैं इसे किराये पर उठा देंगे, पर पापा किराये पर उठाने के लिए तैयार नहीं। कहते हैं, जब कभी कोई घर में आ जाता है तो ठहराने के लिए कोई जगह नहीं होती। वैसे सात सौ किराया मिल सकता है। अभी पांच-सात दिन पहले ही कोई देखने आया, था कहता था छः महीने का एडवांस ले लो···"

"फिर···मानता कौन नहीं?" उमा तौलिए से मुँह पोंछती हुई बोली।

विवाह-शादी पर कुछ औरतें खुशी से गहना-कपड़ा पहनती है, और कुछ एक-दूसरी को नीचा दिखाने के लिए। तो क्या यहाँ पुष्पा भी इसी इरादे से यह सब पहने हुए है? उमा का मन कड़वाहट से भर उठा। पुष्पा इस कदर की नीचता दिखा सकती है—इसका वह अनुमान भी नहीं कर सकती थी।

उमा सीधी रसोई की ओर बढ़ गयी। सोहागवती नाश्ते के लिए पराठे बना रही थी। महरी जूठे बर्तन साफ कर रही थी। रसोई के कोने में सब्जी की टोकरी रखी थी। उमा सब्जी की ओर देखती हुई बोली—"भाभी, मुझे बताइए क्या कुछ करना है। आप बाहर जाकर बैठिए—रसोई का काम मुझ पर छोड़िए। सिर्फ बता दीजिए कि क्या बनवाना है।"

सोहागवती ने स्नेह-भरी निगाह से उमा की ओर देखा, फिर धीरे से बोली—"पहले कुछ चाय वगैरा पी लो, मैं तुम्हारे ही लिए यहाँ बैठी हूँ।" कहने के साथ ही उसने प्लेट उमा की ओर बढ़ा दी।

खूब गर्म नमकीन पराठा देख उमा को एकाएक भूख लग आयी।

सोहाग ने जल्दी में दूसरा पराठा भी डाल दिया और कहा, "लस्सी पियोगी या चाय?"

"चाय मिल जाये तो अच्छा है भाभी।"

चाय का प्याला ले सोहाग बाहर जाने को हुई तो कहा—"थोड़ी देर के लिए बाहर आ जाना, फिर मैं तुम्हें वहाँ उठने को कह दूँगी। यहाँ सब्जियाँ पड़ी हैं, जो जी चाहे बनवा लो। आटा महरी गूँद देगी, और रोटियाँ तंदूर पर बनेंगी···उसके लिए एक माई को कह रखा है, एक-आध घंटे में आ जायेगी।"

बाहर आँगन में आस-पड़ोसवालियों का आना-जाना शुरू हो गया था। कोई पूछ रही थी—"अरी सोहाग, माँ जी को हुआ क्या था? उस दिन तो अच्छी-भली थी···।"

सोहाग बारी-बारी से सबको हालत बयान कर चुकी थी, कि कैसे अच्छी-भली शाम को आँगन में चारपाई डाले लेटी थी, कि कुछ देर बाद कहने लगी—'सोहाग, छाती में दर्द हो रहा है, जरा देखना। कोई चूर्ण

सुनीता ने कहा—"इसके लिए पापा भी नहीं माने। कहते हैं, बिजनेस-मैन नहीं रखना, कोई सर्विस वाला मिल जाये तो ठीक है।" सुनीता ने समझाने के ढंग मे कहा—"पापा कहते हैं, जो सर्विस में होगा, वह कभी-न-कभी तो ट्रांसफर होगा ही, बिजनेस वाले को दे दिया तो उठने का कभी नाम नहीं लेगा।"

"बात तो ठीक है।" उमा ने संक्षिप्त-सा जवाब दिया। फिर गिलास ले चाय पीने लगी।

चाय पीते हुए पूछा—"नीचे कौन-कौन हैं? कोई बाहर से नहीं आये?"

"बाहर से तो अभी कोई नहीं आया आंटी, पर चाचीजी और बुआजी ने आँगन मे दरी बिछा ली है। वे लोग चाय वगैरा पीकर दरी पर बैठ गयी हैं। बुआजी आपके लिए पूछ रही थी।"

उमा ने जल्दी से चाय पी। मन-ही-मन अपने को कोसती हुई उठ खड़ी हुई। सुनीता ने बताया—"आपका सामान इस कमरे में लाकर रख दिया है। बाथरूम मे तौलिया वगैरह रखा है, आप यहीं नहा लीजिए''' माँ कह रही थी कि आप इसी कमरे मे रहिए—नीचे बहुत भीड़-भाड़ है।"

नहा-धोकर उमा बाहर आयी। सफेद वाइल की साड़ी, सफेद सादा आधी बाँहों का ब्लाउज। उमा नीचे उतरी तो आँगन में बैठी पुष्पा को देख दंग रह गयी। पुष्पा के कानों में पड़े हीरे के टाप्स उस हल्की नर्म धूप में जगमगा रहे थे। कट केमरिक का बिना बाँहों का ब्लाउज, उस पर बढ़िया लेस की सुन्दर सफेद साड़ी। बायें हाथ की हथेली पर चेहरे का बायाँ भाग टिका था। उँगली में पड़ी अँगूठी का हीरा दमक रहा था। ट्रेन में पुष्पा की कलाई मे घड़ी नहीं बँधी थी। अब नयी चौकोर डिजाइन की घड़ी का काला स्वेड फीता पुष्पा की गोरी कलाई को सुशोभित कर रहा था और दूसरी कलाई मे सफेद मीना के काम की दो मोटी-मोटी चूड़ियाँ थी जो लेस की सफेद साड़ी के साथ खूब मैच कर रही थी।

उमा आखिरी सीढ़ी पर खड़ी-खड़ी अवाक्-सी पुष्पा को देखती रही और सोचती रही—आखिर इस प्रदर्शन की जरूरत क्या पड़ गयी?

विवाह-शादी पर कुछ औरतें खुशी से गहना-कपड़ा पहनती हैं, और कुछ एक-दूसरी को नीचा दिखाने के लिए। तो क्या यहाँ पुष्पा भी इसी इरादे से यह सब पहने हुए है ? उमा का मन कड़वाहट से भर उठा। पुष्पा इस कदर की नीचता दिखा सकती है—इसका वह अनुमान भी नहीं कर सकती थी।

उमा सीधी रसोई की ओर बढ़ गयी। सोहागवती नाश्ते के लिए पराठे बना रही थी। महरी जूठे बर्तन साफ कर रही थी। रसोई के कोने में सब्जी की टोकरी रखी थी। उमा सब्जी की ओर देखती हुई बोली—"भाभी, मुझे बताइए क्या कुछ करना है। आप बाहर जाकर बैठिए—रसोई का काम मुझ पर छोड़िए। सिर्फ बता दीजिए कि क्या बनवाना है।"

सोहागवती ने स्नेह-भरी निगाह से उमा को ओर देखा, फिर धीरे से बोली—"पहले कुछ चाय वगैरा पी लो, मैं तुम्हारे ही लिए यहाँ बैठी हूँ।" कहने के साथ ही उसने प्लेट उमा की ओर बढा दी।

खूब गर्म नमकीन पराठा देख उमा को एकाएक भूख लग आयी।

सोहाग ने जल्दी में दूसरा पराठा भी डाल दिया और कहा, "लस्सी पियोगी या चाय ?"

"चाय मिल जाये तो अच्छा है भाभी।"

चाय का प्याला ले सोहाग बाहर जाने को हुई तो कहा—"थोडी देर के लिए बाहर आ जाना, फिर मैं तुम्हें यहाँ उठने को कह दूंगी। यहाँ सब्जियां पड़ी हैं, जो जी चाहे बनवा लो। आटा महरी गूंद देगी, और रोटियां तंदूर पर बनेंगी···उसके लिए एक माई को कह रखा है, एक-आध घंटे में आ जायेगी।"

बाहर आँगन में आस-पड़ोसवालियों का आना-जाना शुरू हो गया था। कोई पूछ रही थी—"अरी सोहाग, माँ जी को हुआ क्या था ? उस दिन तो अच्छी-भली थी···।"

सोहाग बारी-बारी से सबको हालत बयान कर चुकी थी, कि कैसे अच्छी-भली शाम को आँगन मे चारपाई डाले लेटी थी, कि कुछ देर बाद कहने लगी—'सोहाग, छाती मे दर्द हो रहा है, जरा देखना। कोई चूर्ण

हो तो ले आओ—जी बहुत मचला रहा है।' चूर्ण दिया, कुछ फायदा नहीं हुआ और दर्द के मारे माँ जी छटपटाने लगी थी। वह तो घर पर थे नहीं, सुनीता को भेजकर डाक्टर शर्मा को बुलवाया। डाक्टर आये तो देखते ही बोले—'जल्दी से अस्पताल ले जाना होगा।'

आधी बात सुन पूछने वाली बीच में बोल उठती—"बेचारी ने प्राण भी त्यागे तो वहाँ अस्पताल मे! इस घर से इतना मोह था, पर किस्मत देखो, अन्त समय यह भूमि नसीब न हुई।" दूसरी एकदम बोल उठती—"जो जगह उसकी किस्मत मे लिखी थी, उसने तो चलकर नही आना था बहन! घर में प्राण त्यागने होते तो यहाँ से जाती ही क्यो?" बात की समाप्ति के साथ ही दूसरी एकदम बोल उठती—"वहाँ आपरेशन हुआ था?"

"नही री, आपरेशन की नौबत ही कहाँ आयी···वह तो पहुँचने के साथ ही चल दी···*क्यों सोहाग ऐसा ही हुआ है न? मुझे क्या पता चलता,* अगर कान्ता न बताती तो···कान्ता को तुम्हारी सुनीता ने ही बताया था कि माँ जी को रात अस्पताल में ले गये थे।"

"सुबह सबेरे ही पुरुष लोग श्मशान भूमि मे अस्थियाँ चुनने को चले गये थे। चौथे की रस्म तीसरे दिन ही कर दी गयी थी। अगला दिन रविवार है—रविवार को यह रस्म अच्छी नही समझी जाती, सो यह फैसला श्मशान भूमि में ही सुना दिया गया था।"

उमा एक ओर बैठी थी, आनेवालियों की नजरें उस पर पड़ती तो वह सकुचाकर सिर नीचे झुका लेती। "यह बीच वाली जो है, वह सोहाग से छोटी है और उधर वाली सबसे छोटी। दयावती की यही तीन बहुएँ हैं। लड़की एक ही है···बेचारी लड़की···वह भी कुमारी, बचपन में बाप का सुख नही देखा, जवानी में माँ भी छोड़ गयी। भाई-भावज लाख अच्छे हो, फिर भी माँ माँ है।"

बातों का अन्त नही था, कही मिलकर बातें कर रही थी तो कही घुसर-पुसर हो रही थी, सब एक साथ कई नजरें पुष्पा पर जा अटकतीं। पुष्पा जाने-अनजाने कभी रूमाल आँखो से छुआती तो कभी वह नाक की नोक के आगे रख लेती।

रूमाल भी खूब बढ़िया था। दोनों कोनों पर लेस लगी थी और बीच का कपड़ा नाम-मात्र ही, रूमाल आँख पर होता तो नीचे लेस वाला कोना ही झूल उठता।

पुष्पा को यह सब क्या सूझा ? उमा रह-रह कर उसी की ओर देखती हुई सोच रही थी।

इधर लोग अभी भी आ रहे थे। बेजी उस बीच नहीं थी, अभी तक उमा ने यह देखा नहीं था। अब बेजी के साथ-साथ बम्बई वाली उनकी भाभी जी को देखा तो एकदम सकते में आ गयी। यह चाची जी हैं। माँ जी की देवरानी। माँ जी कई बार इनका जिक्र कर बैठती थी, पर देखने का अवसर एक-आध बार ही उनको मिला था। हाँ, पुष्पा उनके बारे में बहुत कुछ सुनाया करती थी। अपनी भाभी के साथ बेजी की शान ही कुछ और थी।

इधर-उधर भीड़ पर निगाह डालती हुई बेजी भाभी जी का हाथ थामे बोल उठी—"यहाँ बहुत उमस है राज, इधर बरामदे की ओर ही बैठ जाओ, मैं पखा लगवाये देती हूँ।"

बरामदे में राज चाची के लिए दरी के ऊपर साफ पलँगपोश बिछाया गया। जमीन पर बैठने की आदी नहीं वह, इसी से बेजी सोफे पर रखा कुशन उठा लाई। राज ने आनाकानी की तो बेजी हाथ मटकाती हुई बोली—"यहाँ तुमसे नहीं बैठा जायेगा राज, पीठ अकड़ जायेगी। इधर दीवार के साथ पीठ लगाकर बैठो।"

ड्राइंगरूम के दरवाजे के बीच खड़ी सुनीता के माथे पर त्यौरियाँ चढ़ी थी। कुशन पर जो कवर चढ़ा था उसकी कढ़ाई सुनीता ने ही की थी।

चाची जी खूब अमीर हैं, यह घर वाले सभी जानते थे। चाचा जी मिल मालिक हैं। अमृतसर में कपड़े के थोक व्यापारी। बम्बई में कई फ्लैट किराये पर दे रखे हैं, और अमृतसर की जायदाद का तो कहना ही क्या ?

चाची जी की बड़ी लड़की रंगून में रहती है। वह भी अमीर घराने में ब्याही गयी है। दूसरी लड़की आशा है, चाचा जी और चाची जी उसी के

लिए लडका देखने दिल्ली आये हैं।

अमीरी मे सब कुछ माफ है। साज-सज्जा और वेश-भूषा चर्चा का विषय भले ही रहे पर सब धन-दौलत के आगे आकर दब जाती है। बातें बनाने वाली भी घर की होती हैं फिर भी सामने देख कुछ कह नही सकती।

चाची जी यही है, और चौथे दिन यहां आयेंगी ही, यही सोच पुष्पा ने भी अमीरी के प्रदर्शन मे कोर-कसर नहीं छोड़ी ? जो जितनी हैसियत मे होता है, उससे बढ़-चढकर ही दिखावे में विश्वास करता है। चाची जी की भांति हीरे की चूड़ियां न सही, मीना के काम की चड़ियां तो हैं ही; यही सोच पुष्पा ने सोने की दूसरी चूडियां उतार यह पहन रखी हैं। कानों में सब चलता है। बड़े टाप्स भी और छोटे-छोटे भी।

पुष्पा का गला सूना है, चाची जी ने हीरे का पेंडेंट लटका रखा है तो इससे क्या फर्क पड़ता है, वह मां जी की देवरानी ठहरी और यह पुष्पा। आखिर इस घर की उस मरने वाली की मँझली बहू है, बहू ने गले में कुछ पहन नही रखा तो अन्तर उसकी अमीरी मे नहीं आ सकता, देखने वाले समझते हैं कि यह अवसर ही ऐसा है।

बाहर पुरुष लोग उठ गये थे। सहन मे बैठी स्त्रियां भी उठ कर जाने लगी थी।

देजी एकाएक चौंकती-सी सोहागवती से बोल उठी—"अरी सोहाग, चाची जी से पानी-वानी भी नहीं पूछा···तुम्हारी लड़की सुनीता तो बिल्कुल मूर्ख है, कितनी बार उससे कहा था कि तुम्हारी यह चाची जी आयी है उनके बैठने के लिए गद्दी वगैरा बिछा दो, पर अनसुना करके खड़ी रही।"

सोहाग ने जवाब नही दिया। चुपचाप रसोई की ओर बढ गयी। भीतर से नीबू का शर्बत बनाकर चाची के लिए भेज दिया। फिर थोड़ी देर बाद आकर बोली चाची से—"आप भीतर जाकर सोफे पर लेट जाइए चाची जी ··बैठी-बैठी थक गयी होंगी।"

खाना खाते-खिलाते ढाई बज गये। पुष्पा-खा-पीकर बच्चों को लेकर कमरे मे आराम करने चली गयी थी। उमा ने सोहाग को भी

आराम करने के लिए भेज दिया था। रात के लिए अँगीठी पर साबुत मांश चढा रसोई से बाहर निकली ही थी कि लता सामने आ खडी हुई।

जब से उमा आई है, यहाँ लता से बात करने का मौका ही नही मिला। सुबह उसके उठने से पहले ही लता उठ गई थी। फिर लोगो के आने-जाने का क्रम बँधा रहा। खाना ले जाने का काम सुनीता ही करती रही थी। लता भीतर कमरे मे ही बैठी रही थी। सोहाग ने उसे कमरे में ही बैठे रहने को कह रखा था। शोक प्रकट करने को आने वाली स्त्रियां उसके आगे सहानुभूति दिखला उसे रुलाती रहेंगी, यही सोच उसने सुनीता से कहा था, "दीदी को बाहर न भेजना, कहना वही रहे।"

अब सब जब इधर-उधर हो गये तो अवसर देख लता मँझली भाभी के पास आ खड़ी हुई।

एकाएक उमा को सूझा नही कि वह क्या बात करे। आगे बढ़कर उसे गले लगाना भी न हो सका। प्यार पर लता रो न उठे, इसी आशंका से वह वही खड़ी रही। लता कुछ क्षण उमा की ओर देखती रही, फिर जल्दी से उसके गले में बाँहें डाल कर सुबक उठी।

उमा उसकी पीठ को सहलाती जा रही थी। मुँह से एक शब्द भी निकलना असम्भव हो गया था। लता की सुबकियाँ उसके अन्तर्मन को छू रही थी। जो आँखें अभी तक सूखी ही थी, वह अविरल आँसू बहा रही थीं। लता की सुबकियाँ ठहर गईं तो उससे भी कहा गया—"धीरज रखो लता। तुम तो समझदार हो···" कहने के साथ ही उसने सुराही में से ठंडा पानी लिया और गिलास उसकी ओर बढ़ाती हुई बोली—"पानी पी लो लता···"

पानी पी लेने के बाद उमा लता को अपने साथ ऊपर ले गई। महेश पहले से ही ऊपर चला गया था। नरेश और सोमेश ड्राइंगरूम मे बिछी दरी पर तकिए लिए सो गये थे। चाची जी और चाचा जी तो बहुत पहले से ही चले गये थे। उन्हें कुछ जरूरी काम के लिए जाना था, सो खाना खाने के लिए भी नही रुके थे। बेजी बरामदे में चारपाई बिछवा कर लेट गई थीं। सुनीता किताब खोल पढने लगी थी। एक ओर बिछे तख्त पर सोहाग लेटी हुई थी।

गर्मी की भरपूर दोपहर थी। सारा घर ऊँघने लगा था। ग्रन्थ साहेब के पाठिए ऊँची-धीमी आवाज मे ग्रन्थ साहेब का पाठ कर रहे थे। घर का छोटा नौकर दीनू उनकी सेवा के लिए तैनात कर दिया गया था। कभी नीबू के शर्बत की माँग होती, कभी गर्म दूध लाने को कहा जाता और कभी चाय की फरमाइश होती।

नीबू के शर्बत की बोतल वहीं रख दी गई थी और दूध की पतीली जाली में रखते हुए सोहाग ने दीनू से कहा था, "दूध ठंडा हो जाये तो बोतलों मे डाल कर फ्रिज में रख देना।"

बाहर धूप चटख रही थी। अगली ओर बरामदा था। बरामदे मे लगी चिकें खोल दी गई थीं। फिर भी गर्म लू के झोंके जब-तब भीतर पहुँच ही जाते थे।

इस मकान में कुल मिला कर तीन बड़े कमरे और एक ड्राइंगरूम है। आगे छोटा बरामदा, पीछे की ओर सहन। यह मकान सोमेश को अपने लाहौर वाले मकान के बदले में मिला था। देश के विभाजन के पहले सोमेश लाहौर मे अपने नाना जी के पास रहता था। दयावती अपने माँ-बाप की इकलौती संतान थी। पुत्र का अभाव उसके माँ-बाप को हमेशा से खटकता रहा था। इसी से जब दयावती से सोमेश पैदा हुआ तो नाना-नानी ने उसे गोद लेकर अपना पुत्र घोषित कर दिया था। देश-विभाजन से कुछ ही समय पहले सोमेश एक स्कूल में पढाने लगा था। नाना की बहुत इच्छा थी कि वह वकालत पास करके एक अच्छा वकील बनता, परन्तु कानून सोमेश के बस की बात नही थी। उसका झुकाव तो शिक्षक बनने की ओर था। इसी से एल-एल० बी० के प्रथम वर्ष में अनुत्तीर्ण होते ही उसने बी० टी० में दाखिला ले लिया था।

सोमेश की नानी पहले से ही स्वर्ग सिधार चुकी थी और नाना जी देश-विभाजन के दो महीने बाद। तब वह लोग अमृतसर में आकर बस गए थे।

दयावती और उसके पति सुरेन्द्रनाथ बच्चों सहित अमृतसर मे ही थे।

अमृतसर में सुरेन्द्रनाथ कपड़े के थोक व्यापारी थे। उनकी एक दुकान

हाल बाजार में थी और दूसरी गुरू बाजार में। गुरू बाजार वाली दुकान पर उनके छोटे भाई नरेन्द्र काम करते थे।

शहर में तिमंजिला मकान था। विवाह से पहले नरेन्द्र और सुरेन्द्र इकट्ठे एक ही मकान मे रहते थे। माँ बचपन मे ही चल बसी थी। बेजी सबसे बड़ी थीं। दोनों भाइयों की देख-रेख वही किया करती थी। तीनों भाई-बहनों मे अगाध स्नेह था। बेजी, लक्ष्मी की शादी के बाद इनके पिता सखूराम ने दूसरी शादी कर ली थी। शादी के अवसर पर दोनों भाइयों के लिए बेजी ने बाप से इस बात का फैसला कर लिया था कि कपडे की दुकान सुरेन्द्र और नरेन्द्र के नाम कर दी जाये और मकान भी इन्ही का रहेगा।

यह सब तो बहुत दिनों की बातें हैं। बेजी ने शायद ही कभी इन बातों पर ध्यान दिया हो। पर सुरेन्द्रनाथ जब तक जीवित रहे दयावती से यही कहते रहे—लक्ष्मी बहन न होती तो न जाने हमारा क्या हाल होता। केवल दयावती ही नही, दयावती के तीनों लड़के भी यह जानते है। और बडी बहू सोहाग तो खूब अच्छी तरह से सुनती रहती है कि उस समय इस घर मे बुआ जी की जो धाक थी, भाभी और भाइयों पर जो इनका अधिकार था, वह न कभी किसी दूसरे का हुआ है न हो सकेगा। सोहाग को याद है, माँ जी कहा करती थी—तुम्हारा इस घर में आना बेजी के जोर देने पर ही हुआ था, वरना सोमेश का रिश्ता तो मेरे पिता जी एक दूसरी जगह पर तय कर गये थे।

हाँ, वह देश-विभाजन का समय था। सोहाग उस समय को कभी भूल नही सकती, जब माँ-बाप और भाई-बहनों से बिछुड़ी वह रावलपिंडी से अपनी ताई जी के पास आ पहुँची थी।

सोहाग की माँ ने बाकी बच्चों को अपने भाई के पास भेजने का फैसला कर रखा था, और उसके पिता बच्चो को अमृतसर में भेजना चाहते थे। किस्मत की बात थी कि सोहाग अमृतसर में आ गयी थी, एक दिन भी और वहाँ रह जाती तो उसका भी वही होता जो सब परिवार के साथ घट गया था। जो हो गया था वह भी कितने दिनों तक छिपा रहा था। फिर जिस दिन उस सर्वनाश का समाचार मिला था तो सोहाग को

दुनिया अँधेरे में डूबती-सी मालूम हुई थी।

उस आपा-धापी और हाय-तोबा में कुछ दिन बिसूरते हुए निकल गये थे। बेजी अपने भाई के यहाँ जाती तो यही रोना ले बैठती—"जवान लड़की है, कैसे इसकी जिम्मेदारी से निबटूंगी। लड़की सुन्दर है। सुशील भी है। फिर भी दान-दहेज के लिए सब चाहिए ही। लड़की तो तीन कपड़े ही लेकर आई थी, जो था वही सब तबाह हो गया। हम तो दोनों ओर से मारे गये। सोहाग को साथ लिए बेजी घंटों दयावती के यहाँ गुजार जाती।

संग्रहणी के रोग से दयावती के पिता को गुजरे अभी एक-आध महीना ही हुआ था। वह पिता के शोक से दु.खी थी, फिर चिन्ता सोमेश की भी थी जिसे अभी तक कहीं कोई काम नहीं मिला था। दुकान पर बैठना सोमेश को पसन्द नहीं था। नौकरी की तलाश मे चार-पाँच महीने यों ही बर्बाद हो गये थे। अब जिद कर रहा था दिल्ली जाने की। दयावती अकेले मे उसे भेजना नहीं चाहती थी। पर सोमेश एक ही जिद पर अड़ा था—"तुम मुझे वहाँ जाने की इजाजत दे दो माँ, मुझे यकीन है कि मुझे वहाँ किसी स्कूल में जगह मिल जायेगी।"

इधर सोमेश जिद पर था और उधर बेजी जाने-अनजाने सुनाती रहती थी। इस लड़की का कही ठिकाना हो जाये तो मैं भी सुख की साँस लूँ।" फिर कुछ रुक कर कहती—"मालूम नही भगवान मेरी क्यों नही मदद करता। मैंने तो सबका भला चाहा है, जो नही हो सकता था वह भी कर दिखाया है। बाप को दूसरी शादी करते हुए देखा तो इन दोनों के लिए तड़प कर रह गयी। कोई और होती तो आँसू बहाती बैठी रहती, पर नही, मैंने हिम्मत नही हारी, साफ-साफ बाप से कह दिया—जब तक यह मकान और दुकान सुरेन्द्र-नरेन्द्र के नाम नही लिखवाई जायेगी, तब तक तुम दूसरी शादी नही कर सकते।" यहाँ तक सुनाती हुई वह लम्बी साँस खींचती हुई कहती—"आह! बाप बाप था, खून उसका सफेद नही हुआ था। इन मासूम बच्चो की ओर देखा तो मुझसे बोला—लक्ष्मी, तुम ठीक कहती हो। आने वाली लाख अच्छी हो फिर भी मकान-दुकान पर कब्जा जमायेगी ही। यह दुकान और मकान, इन

दोनों का है और इन्हीं के लिए ही रहेगा ।

बस फिर क्या था। मकान और दुकान दोनों के नाम लिखवाई गयी। दुर्गामिणी मन्दिर के पास वाला छोटा मकान उनके लिए रहा। बाप नयी दुल्हिन को लाया तो उसी दुर्गामिणी मन्दिर वाले मकान में ही रखा। यह दोनो भाई यहीं रहे। अपना घर छोड़ ऊपर के हिस्से में मैं रहती रही तब तक जब तक तुम नही आयी।

एक पीढ़ी एक छोटा-सा इतिहास बन गयी। इतिहास की कही समाप्ति नही, आदमी आते हैं, फिर चले जाते हैं, रहते हुए जो कुछ भोग जाते हैं और कुछ अंश में जो छोड जाते हैं, वही चिह्न घटनाएं बन जाती हैं, और घटनाएँ इतिहास का सृजन करती चली जाती हैं।

वरना दयावती के आने पर जो था, वह अब नहीं रहा, जो उससे पहले का था वह दयावती के आने पर भी नही रहा था। दयावती के ससुर तब नही थे, सौतेली सास भी दुर्गामिणी वाले मन्दिर के पास वाला मकान बेच विकवाकर अपने बाप के यहाँ जा बसी थी।

तब तिमंजिला मकान ही था, इसी मकान में सोमेश हुआ, नरेश, महेश और लता भी आयी।

महेश जब छोटा-सा था तभी नरेन्द्र चाचा की शादी हुई थी। तब व्यापार खूब अच्छा था।

गुरू बाजार की दुकान बढ़ा ली गयी थी। हाल बाजार मे बहुत बड़ी दुकान खोल दी गयी थी। लोगों में नाम था, इज्जत थी, इसी से नरेन्द्र चाचा का विवाह भी खूब धनी बाप की बेटी के साथ हुआ।

विवाह में मिले दान-दहेज की चर्चा बहुत दिनों तक चलती रही। पर राज चाची इस पुराने तिमंजिले मकान में खुश न हो सकी। घर में होती तो मालूम होता जैसे साँस घुटी जा रही है। कमरे से बाहर झाँकती तो नाक में सड़ाँद व्याप जाती। छोटी तंग गली, लोगों की भीड़, आस-पास वालों का शोर। मन उन्हे अपने बाप की लारेन्स रोड वाली कोठी की ओर खीच लाता। जहाँ सब खुली सड़क थी, भीतर-बाहर सब खुला-खुला-सा था। कोठी के बाहर सुन्दर मुलायम घास वाला लॉन था, पीछे के लॉन में था टेनिस कोर्ट। सजे-सजाये हवादार कमरे, बढ़िया कालीन

सुन्दर-सुन्दर पर्दे। वह कमरे के चारों ओर नजर डालती तो मन रोने को हो जाता।

पापा ने क्या देखा, यह घर है क्या? ऊपर-नीचे सब बन्द ही बन्द? पैसा है, होगा। इससे क्या? रहने को अच्छा घर नहीं। दिल बहलाने को कोई अच्छी चीज नहीं। खाओ, पियो और सो जाओ बस। नहीं, ऐसा नहीं चलेगा। मैं यहाँ इस घर में और अधिक दिन नहीं रह सकूँगी—कभी नहीं रह सकूँगी।

राज भाभी की यह उलझन एक दिन सुलझ गयी। मकान बेचा नहीं गया। कीमत का हिसाब लगवा आधी रकम नरेन्द्र के हवाले कर दी गयी। नरेन्द्र के हाथ पैसा देते समय सुरेन्द्रनाथ ने कहा था—नयी जगह पर जाकर पुरानी जगह भूलना नहीं नरेन्द्र! इस मकान में हमारा बचपन बीता है। सुख-दुःख की घड़ियाँ साथ-साथ व्यतीत की हैं। जब कभी कुछ याद आ जाये तो बेखटके चले आना—यह घर अब भी हम सबका सांझा है।

लेकिन यह सब चलता नहीं। परिस्थितियाँ जब पहले से कहीं अधिक सुविधाजनक हो जाती हैं तो पुरानी बातें एक धुंध के नीचे आकर दब जाती हैं। कभी-कभार कुछ दीख भी जाता है तो उस ओर ध्यान बँटाने की फुर्सत ही नहीं होती।

सुरेन्द्रनाथ जी के आगे सीमित दायरा था। सुखपूर्ण सन्तोषभरी जिन्दगी थी। न बढ़ती हुई इच्छाएँ थीं, न आकाश के छूने की आकांक्षाएँ।

सोमेश दिल्ली में था, स्कूल-मास्टर। बेजी की जेठानी की लड़की सोहाग के साथ विवाह हो जाने के पश्चात वह सोहाग के साथ दिल्ली चला गया था। दूसरा लड़का नरेश दुकान के काम में साथ दे रहा था और तीसरा महेश एल-एल० बी० कर रहा था। लता अभी छोटी थी—तीन भाइयों की एक बहन।

इधर नरेन्द्र के आगे बहुत कुछ फैला हुआ था। एक काम के साथ कई और-और काम बढ़ गये थे। अमृतसर से बम्बई तक और बम्बई से आगे मद्रास तक जिस चीज को छूता वही सोना बन जाती। नरेश आकर

बताता, चाचा जी ने नयी कार खरीदी है। चाची जी छन्नामल ब्रूअर के यहाँ आयी हुई थी। कह रही थीं, परसों बम्बई जा रही हूँ।

सुरेन्द्रनाथ सुनते तो चुप रह जाते, सोचते—पैसा आदमी को पत्थर क्यों बना देता है? नरेन्द्र के पास कार है, इधर-उधर घूमने की चाह है, पर मिलने के लिए फुर्सत नहीं!

महेश कहता—चाचा जी मिले थे, क्लब में बैठे थे। पूछने थे—माँ ठीक है न तुम्हारी?

दयावती सुनती तो ठंडी सांस ले चुप हो जाती। कितनी बेगानी-सी बातें हैं—'माँ ठीक है न तुम्हारी?'

पर यह सब बहुत दिन पहले की बातें हैं। अब न सुरेन्द्रनाथ जी हैं और न ही दयावती। परन्तु चाचा-चाची जी के आ जाने पर अब फिर से उन बातों की पुनरावृत्ति हो गयी है।

चाची जी का रंग-ढंग और वेशभूषा जहाँ [illegible] और मोहन को सोचने को विवश करती रहती थी, वहाँ मोनिका और नरेन्द्र भी अछूते नहीं रहे।

महेश बता रहा था—चाचा जी जितनी देर बैठे रहे, सिगार ही पीते रहे। श्मशान भूमि में हम सब चिता के पास खड़े थे, और चाची जी दूर पेड़ की छांव में पड़ी बेंच पर [illegible]। लोग कहते हैं—[illegible] चाची माँ के बराबर होती है। बड़ा भाई बाप के बराबर होता है। लेकिन चाचा जी, चाचा जी—इन दोनों में से किसी रिश्ते को भी नहीं मानते। बेगानों की तरह आये, और बेगाने बन चले भी गये।

शाम के साये ढलने लगे थे। [illegible] पाइप लगा कर आंगन [illegible]। [illegible] बन्द हुई तो सुनीता ने [illegible]—[illegible] फर्श जरा ठण्डा हो [illegible]।

लगे हैं। सुनीता, नलका बन्द कर दे। इन मूर्खों को तो होश नहीं, पर तुम तो सयानी हो।"

इधर से बेजी भी गुर्रा उठी—"नीचे फर्श में से भड़ास उठ रही है, और ऊपर लाड़े यह कमबख्त नहा रहे हैं! ओ सुरेश, इधर आ, छोड़ पाइप को।"

बेजी की आवाज सुन पुष्पा लपकती हुई आ पहुँची, सुरेश की बाँह खींचती हुई बोली—"तुम्हें वहीं छोड़ आती तो अच्छा था, यहाँ तुम लोगों की जरूरत ही किसको है! जो उठता है वही चिल्लाने लगता है।"

बेजी सुन रही थी। पुष्पा धीरे तो बोल नहीं रही थी। सुबह ही इन बच्चों को लेकर बेजी उलझ रही थी। सुबह सुरेश नहाने के लिए बाथ-रूम में चला गया था और बेजी दरवाजे को खटखटाती हुई कहती रही थीं—"पुष्पा, तेरे बच्चों को तमीज नहीं है, इतने बड़े हो गये पर शऊर जरा नहीं।"

पुष्पा कुछ और कहती और बेजी कुछ और सुनाती। जवाब कुछ और होता और सवाल कुछ और; पर तभी बाहर से नरेश ने आकर कहा था—"बेजी, बाहर राय साहेब जी आये हैं, उमा कहाँ है?"

"राय साहेब—कौन राय साहेब?"

"उमा के पापा आये हैं बेजी—उमा है कहाँ?"

"मैं क्या जानूँ कहाँ है, पूछ लो पुष्पा से।"

पुष्पा तौलिये से मंजू को पोंछ रही थी, नरेश को बेजी से बात करते हुए देखा, तो पीठ मोड़ ली। तभी नरेश ने आकर पूछा—"पुष्पा, बाहर तुम्हारे चाचा जी आये हैं।"

"चाचा जी—यहाँ?" पुष्पा के चेहरे पर आश्चर्य फैल गया।

"उमा कहाँ है?"

"वह तो ऊपर गयी थी। तुम ठहरो, मैं देखती हूँ।" पुष्पा ऊपर जाने को हुई, फिर एकाएक रुक गयी। कुछ सोच कर सुरेश से बोली—"सुरेश, ऊपर से उमा आन्टी को बुला लाओ, कहो, मम्मी जरूरी काम से बुला रही हैं। जल्दी से आओ।"

उमा नीचे आयी तो सुन कर विस्मित हो गयी—'पापा जी यहाँ ? पापा जी को पता कैसे चल गया ?' वह सोचती-सी कुछ देर खड़ी रही कि महेश ने आकर कहा—"उमा, आओ—पापा जी तुम्हें पूछ रहे हैं।"

ड्राइंग रूम मे उमा के पिता राय साहेब जमनाप्रसाद जी बैठे थे। उमा पास आयी तो सिर पर हाथ फेरते हुए बोले—"अच्छी हो न ?"

उमा ने धीरे से कहा—"जी !"

अचकचाते हुए वह बोले—"मैं कल ही यहाँ आया था। कल तो कुछ मालूम नही हुआ। सुबह कनाट प्लेस मे पुरी साहेब मिल गये तो उन्होने ही बताया कि महेश की माता जी का स्वर्गवास हो गया है।"

उमा साथ वाले सोफे पर बैठ चुकी थी। नरेश उठ गया था, महेश खड़ा था। राय साहेब को बैठने के लिए कहकर वह भी मोढ़ा खींच एक ओर बैठ गया।

"महेश, तुम्हारी बड़ी भाभी कहाँ है ? सोमेश से तो मिला हूँ, लेकिन वह दिखायी नही दी।"

"भाभी भीतर काम में लगी है।" उमा ने संक्षिप्त-सा जवाब दिया। भाभी से कोई दुराव नही था, पर यह बेजी…बेजी बड़ी वैसी है, मालूम होते ही आ पहुँचेंगी। फिर इनके जाने के बाद बातें बनाती रहेंगी, यही सोच उमा उठी नही, वही महेश को भी संकेत से जतला दिया कि किसी को बुलाना नही।

"कुछ काम था यहाँ ?" उमा ने वातावरण को सहज बनाने के प्रयत्न मे पूछा।

"हाँ !" राय साहब का छोटा-सा जवाब था। आगे किसी को कुछ सूझ नही रहा था कौन-सी बात कैसे चलाई जाये।

उमा देख रही थी पापा के चेहरे की ओर, जिस पर पिछले कई बरसों से कोई अन्तर नहीं आया—वही दीप्त आँखें, वही ऊँचा चमकता हुआ मस्तिष्क, काले चमकीले बाल। कहीं कोई सफेद बाल नहीं, हो भी तो ऊपर से दिखाई नही दे रहा। उमा को याद है, पापा कहा करते थे—बनाना-बिगाड़ना सब अपने हाथ का खेल है। जवानी में जो अपने को टूटने नही देता, बुढ़ापा उसके लिए जवानी का दिया हुआ वरदान सिद्ध

होता है।

हाँ तो पापा ने अपने आपको जीत लिया है, बुढ़ापे की कोई झलक चेहरे पर दिखाई नहीं दे रही।

कुछ देर देखने के पश्चात् उसने ठंडी साँस ली।

फिर पापा उठने का उपक्रम करते हुए बोले—"तुम तो महेश अभी यहाँ रहोगे ? और उमा, तुम्हारा क्या विचार है ? चण्डीगढ़ आओगी ? वैसे तो मैंने यहाँ एक फार्म भी खरीदना है। यहीं गुड़गाँव के पास। इसी सिलसिले में यहाँ आया था।" बात औपचारिक-सी थी।

उमा ने भी उसी तरह से जवाब दिया—"देखो शायद···"कहने के साथ ही वह चुप-सी खड़ी रही।

एक सवाल दूसरे सवाल से अलग-सा था। वैसे भी उमा जानती है, चण्डीगढ़ आने का न्योता महज कोई बात करने का सुभीता है। बात जब कहने को कुछ होती नहीं तो व्यर्थ की औपचारिकता निभानी पड़ती है।

इसके अतिरिक्त वह कहते ही क्या ? एक लम्बा निःश्वास खींच उमा सोचती रही। हाँ···पापा कहते भी क्या ? यों तो वह भी जानते हैं कि उनके बुलाने पर भी मैं वहाँ जाने की नहीं। प्रत्युत्तर में कोई जवाब न पा पापा बोले—"अब आज तो मैं जा ही रहा हूँ। इस बीच किसी दिन आऊँगा, फिर तुम दोनों को फार्म दिखाने ले चलूँगा।"

महेश ने पूछ ही लिया—"कितना बड़ा फार्म है ?"

"यही कोई बीस एकड़ के लगभग है। बना-बनाया है; मुझे खास कुछ करना नहीं पड़ा। कुछ पेड़ वगैरा ही लगवाये हैं, ज्यादातर तो अंगूर ही लगे हुए हैं।"

उमा जरा-सा मुस्कुरा-भर दी, फिर किसी तरह से कहा—"अच्छी बात है, अंगूर खाने हम भी कभी जायेंगे।"

उमा बाहर तक छोड़ने आयी तो देखा, नये मॉडल की सिल्वर ग्रे फिएट है। रेडियो और रिकार्ड-चेंबर भी लगा हुआ है। पिछली ओर सफेद लेस का पर्दा भी है। पापा ने कार स्टार्ट की, और उमा ने एक ठंडी साँस ली। भीतर की रुलाई चेहरे पर व्याप गयी थी, आँखें पानी के भार

से बोझिल, तन-मन दु:ख से अशक्त !

"चलो भीतर चलो, यहाँ खड़ी-खड़ी क्या देख रही हो ?" महेश ने उसके कन्धे पर हाथ रखा। उमा ने जल्दी से साड़ी के छोर से आँखें पोंछ लीं, फिर धीरे-धीरे भीतर आ गयी।

रसोई में सोहागवती चाय तैयार कर रही थी। उमा को देखा तो पूछा—"तुमने कुछ पिया कि नहीं ?"

"अभी तो जी नहीं कुछ पीने को, चाय तैयार हो जायेगी तो आकर पी लूँगी। मैं जरा ऊपर जा रही हूँ..."

कहने के साथ ही वह सीढ़ियों की ओर बढ़ गयी। पुष्पा और बेजी का सामना करने में उसे झिझक हो आयी थी।

ऊपर आकर वह चारपाई पर लेट गयी। पापा ने नयी कार ली, फार्म खरीदा—और हम लोगों से कुछ कहा ही नहीं !

कमल अगर एक बार ही यहाँ आ जाता तो शायद पापा कुछ सँभल जाते। उसके होते इस तरह एकदम दूर न हो जाते।

लेकिन कमल को क्या ? वह अपनी जगह पर ठीक है। जानता है, यहाँ लौट कर आने से फायदा ही क्या ?

उमा ने करवट बदली और दूसरे ढंग से सोचना शुरू किया। कमल के लिए यहाँ अब रखा ही क्या है ? पापा जानते हैं कि वहाँ कमल को कोई कमी नहीं। अच्छी फर्म है, अच्छा वेतन मिल रहा है। जिस चीज के लिए यहाँ आना आवश्यक होता वह आवश्यकता भी पूरी हो गयी है। विदेश में रहकर पूरा विदेशी ही बन चुका है। पत्नी है, सुन्दर-सा बच्चा है। अंकल जब गये थे वहाँ तो आकर बताया था—उमा, तुम्हारी विदेशी भाभी तो खूब अच्छी है। इतनी खातिर की हमारी कि क्या बताऊँ ! और वह बच्चा, वह बच्चा इतना प्यारा है कि बस देखते रहने को जी चाहता है। लो यह देखो, यह फोटो उसी का है—तुम्हारी भाभी ने दिया था।

कमल का वहाँ बस जाना क्या पापा को बुरा लगा था ? जब विवाह की बात सुनी थी तब भी कहा था—वहाँ रहने का जब फैसला ही कर लिया है तो वहीं विवाह करने में ही क्या बुराई हो गयी। विदेश में रहना हो तो विवाह भी वहीं की लड़की से करना चाहिए। यहाँ की लड़कियाँ

विदेश में अपने पति के साथ पूरी तरह से निभा नहीं पातीं।

ओह ! सब किस तरह से एकदम बदल गया था ! माँ थीं तो घर भी अपना था, माँ गयी तो सब कुछ चला गया; और पापा ने यह कह कर छुटकारा पा लिया— उमा, तुम आंटी के पास रह लोगी ? आंटी तुम्हारी कह रही थी, उमा घर मे अकेली रहती है। उसे मेरे पास भेज दो।

पापा की बात सुन वह रो पड़ी थी, घर छोड़कर जाने को मन नही हो रहा था। माँ की बीमारी ने घर की देख-भाल करना सिखला दिया था। घर का खर्च उसी के हाथ सौंपा जाता था। फिर नौकरों से कैसे, किस तरह से हिसाब लेना है, कौन-सी चीज किस तरह से रखनी है, आने वालों का आदर-सत्कार किस तरह से करना होता है—यह सब बातें, माँ बिस्तर पर पड़ी-पड़ी उसे समझाया करती थीं। तब स्कूल जाते समय नौकर को हिदायतें देना और लौटकर पूरे दिन-भर की जानकारी लेना, सब बचपन में ही वह सीख गयी थी। यही नहीं, पापा की हर जरूरत का ख्याल भी वही रखा करती थी।

पापा उन दिनों कितने दिन बाहर रहते थे। महीने में एक-आध सप्ताह ही घर पर रहते थे। बाकी दिन दौरे पर ही निकल जाते थे। माँ उदास होती हुई कह उठती थी—तुम्हारे पापा मेरी बीमारी देख भागे रहते हैं। पहले इस तरह से नही जाते थे। और वह माँ को ढाढस बँधाने के लिए कह देती थी—पापा का काम ही ऐसा है माँ, वह जान-बूझकर थोड़ा ही ऐसा करते हैं।

माँ बहस नही करती थी, चुपचाप सह लेती थीं। वैसे वह भी जानती थीं कि उनके साथ के बाकी लोग आये दिन दौरे पर नही रहते।

पापा का खिताब पुश्तैनी है। इसी से खूब बड़ा बँगला है। उनके पास मिलने-जुलने वालों का ताँता लगा रहता है, लेकिन फिर भी घर से बाहर रहने की आदत पड़ गयी है। और जब पापा यहाँ होते हैं तो भी रात देर से लौटते हैं। क्लब से लौटते है तो ग्यारह बज जाते हैं। माँ देखती हैं और देखकर चुप रह जाती हैं।

उसका मन नही था मौसी के पास जाने को, यह सब समझते हुए

भी पापा ने उसे मौसी के पास भेज दिया था और कहा था—उमा, पढ़ाई का ख्याल रखना। तब दिल्ली छोड़ वह मौसी के पास शिमले आ गयी थी। हर महीने पापा पैसे भेजते और लिखते मौसी को कि उमा को उदास न होने देना। स्कूल की पढाई खत्म हुई, मौसी उसे दिल्ली ले आयी। उमा का मन खुशी से भर उठा। पर पापा ने चट से कह दिया—तुम्हारे लिए होस्टल में रहना ठीक रहेगा उमा! मेरा कुछ भरोसा नही, हो सकता है जल्दी ही ट्रान्सफर हो जाये।

पापा मुझसे पीछा छुड़ाना चाहते हैं—उमा तब यह अच्छी तरह से समझ गयी थी। होस्टल मे तीन बरस निकल गये। इस बीच पापा का ट्रान्सफर नही हुआ। जब ही मिलते कह देते, इस बार तो ट्रान्सफर रुकवा दिया है, अब आगे क्या होगा कुछ भरोसा नहीं। तुम बी० ए० कर लो, तब इकट्ठे ही जायेंगे। लेकिन इकट्ठे रहने का और पापा के साथ कही जाने का अवसर ही न आया। ताई जी ने उसके पापा के कहने पर उसके विवाह के लिए दौड़-धूप करनी शुरू कर दी थी। फिर एक दिन पापा उसे साथ ले अमृतसर जा पहुँचे थे और ताई ने बताया था—लडका पुष्पा का देवर है। वकालत पास की है। लड़का सुशील है, शक्ल का भी अच्छा है। आजकल यही है, पर कुछ दिन बाद जालन्धर चला जायेगा। इसी से आपको तार देकर बुलाया है।

उमा उठकर बैठ गयी। जिन्दगी के खुले पृष्ठ आँखो के आगे से एकदम हट गये थे। सामने खड़ा महेश पूछ रहा था, "उमा, तुम्हें भाभी बुला रही हैं, कहती हैं, आकर चाय पी लो।"

"अच्छा, चलती हूँ।"

नीचे उतरते हुए महेश कहने लगा, "सुना है पापा इम्पीरियल में ठहरे हुए हैं, चण्डीगढ वह आज नही जा रहे।"

"आपसे किसने कहा?"

"चाचा जी कह रहे थे।"

"कब?"

"अभी ही आये थे। वह अपना चश्मा यहाँ भूल गये थे। वही लेने आये थे। चाचा जी और चाची जी भी तो इम्पीरियल में ठहरी हुई हैं।"

उमा ने जवाब नहीं दिया, चुपचाप रसोई की ओर बढ़ गयी।

चाय पीकर बाहर निकली तो पुष्पा ने उसे अपने पास बुलाते हुए पूछा—"फिर जाकर सो गयी थी क्या ? मैं तो समझती रही कि चाचा जी के पास ही बैठी हो। महेश अन्दर आया तो मालूम हुआ कि चाचा जी तो कभी के चले गये हैं।"

"हाँ, पापा थोड़ी देर बाद ही चले गये थे।"

"कुछ कहते थे क्या ?"

"नहीं, कुछ खास नहीं।"

पुष्पा ने इधर-उधर देखा, फिर उमा का हाथ पकड़ती हुई धीरे से बोली—"सुना है वह भी उनके साथ ठहरी हुई है।"

"कौन ?"

"वही···और कौन ?"

उमा ने हाथ खींच लिया। इशारा पुष्पा का किस ओर है, वह सब जानती है। पुष्पा से कुछ भी नहीं छिपा हुआ। पहले पापा ने जिसे अपने पास रखा हुआ था वह एक सिन्धी औरत थी। इस औरत के साथ पापा की दोस्ती माँ के होते हुए ही थी। माँ को मिसेज चन्दा ने ही आकर बताया था कि पापा क्लब मे उसके साथ ही होते हैं। पर यह दोस्ती अधिक दिन तक नहीं चली थी। मालूम नहीं पापा का मन उससे ऊब गया था या वह ही इन्हें छोड़ गयी थी।

उसके चले जाने के बाद एक बंगाली औरत से दोस्ती की। कुछ दिन यह किस्सा जोर-शोर से चलता रहा। फिर एक दिन सुना, उससे भी पापा ने छुटकारा पा लिया है।

शादी के बाद एक-दो बार उमा पापा के पास गयी थी और पाँच-सात दिन रह कर लौट आयी थी। वहाँ रहकर जो कुछ आस-पड़ोस से सुना था उसके बाद उसका वहाँ जाने को मन नहीं हुआ। रिटायर होने के बाद भी पापा काम करते रहे और पैसा कमाते रहे। शुरू में कभी कुछ उमा के लिए भी भेज देते थे, पर अब ! अब तो मुद्दत ही हो गयी है। और उमा भी सोचती है, अगर पापा ने कुछ भेजा तो वह फौरन ही लौटा देगी। पर पापा ने मानो उसके इरादे को समझ लिया था। कुछ भेजना

तो एक ओर रहा, खत लिख कर हाल-चाल भी नही पूछा।

"चाय ठंडी हो रही है उमा, पियो न!"

"हूँ···कुछ खास ठडी नही, यों भी मैं ठंडी ही चाय पीती हूँ।" कहते हुए एक-दो घूँट सिप किये फिर एकदम प्याला खाली कर दिया।

"आंटी जी···यह चाय गर्म है, दालचीनी डाल कर बनाई है।"

उमा ने प्यार और प्रशंसा-भरी नजरों से सुनीता की ओर देखा, फिर उसके हाथ से प्याला लेते हुए कहा—"तुमने यह सब कब से सीख लिया है? पिछली बार जब मैं यहाँ आयी थी तो तुम्हे कुछ भी करना नहीं आता था।"

"हमारे स्कूल मे कुकिंग क्लास भी होती है आंटी! मैंने पुलाव बनाना भी सीख लिया है, और पुडिंग भी कई तरह की बना लेती हूँ।"

"अरी पुडिंग बनाना कुछ मुश्किल काम तो नहीं है। मेरी भतीजी तुमसे भी छोटी है वह हर तरह की पुडिंग बना लेती है। पिछले महीने बबलू का जन्मदिन था, जन्मदिन पर उसने केक भी खुद बनाया था।" पुष्पा ने दोनों हाथ फैलाते हुए बडे गर्व से कहा—"इतना बड़ा केक था—तीस-चालीस बच्चे थे उस पार्टी मे, सबमें वह केक बाँटा गया था।"

सुनीता चाची की ओर देखती-सी खड़ी थी। बात समाप्त हुई तो वह एकदम वहाँ से भाग खडी हुई।

पुष्पा चाची उसकी बड़ाई सुन नही सकती, इसी से बात काट एकदम भतीजी की तारीफ करने लगी है—यह सुनीता समझ गयी थी। यही नहीं, वह यह भी जान चुकी थी कि बेजी और वह दोनो ही उसे अच्छा नही समझती। सुबह सबेरे भी बेजी चाची से कह रही थी—"यह छोकरी इतनी बड़ी हो गयी पर अक्ल-शऊर अभी तक नहीं आया। अपने बाप-चाचा के सामने ही पूछ रही थी—बेजी, आपके लिए दूध ले आऊं? तुम्हीं बताओ भला, कि यहाँ मैं दूध पीने को आयी हूँ! इसका बाप भी मन में क्या सोचता होगा?"

मां से शिकायत करने का अवसर नहीं था, इसी से सुनीता अपनी बुआ, दीदी लता के पास आकर बैठ गयी। उसे रुँआसी देख लता ने पूछा—"क्या बात है, क्या बेजी ने फिर कुछ कह दिया है?"

"दीदी, ये लोग कब जायेंगे ?"

"कौन ?"

"यही, बेजी और पुष्पा चाची ! मैं तो दो दिन मे ही तग आ गयी हूँ। एक तो इनका काम करूँ और ऊपर से उल्टी-सीधी बातें सुनूं। यह बेजी तो मुझे देखना ही नही चाहती। जैसे ही इधर-उधर से गुजरती हैं, उँगली से अपनी ऐनक की कमानी पकड़े ऐसे घूर-घूरकर देखती हैं कि क्या बताऊँ ! ऐसा गुस्सा आता है कि…"

लता ने होंठ भीचते हुए धीरे से कहा—"बस, आगे कुछ नही कहना, सुनीता, इन लोगों के कान बहुत तेज हैं। कुछ भनक पड़ गयी तो बस चिल्लाना शुरू कर देंगी।"

"मगर ये जायेंगी कब ?"

लता ने ठंडी साँस भरते हुए कहा—"क्या मालूम ? अभी तो कुल तीन ही दिन हुए हैं। तेरहवी तक तो रहेंगे ही। तेरहवी के बाद बुआ जी तो शायद चली जायेंगी, लेकिन भाभियो का पता नही।"

"मुझे तो पुष्पा चाची से भी डर लगता है। मंजू जब भी मेरे पास आकर खड़ी होती है, तो चट से उसे खीचकर ले जाती हैं और फिर सुना-सुनाकर कहती है—वह तुम्हारे बराबर की है जो साथ-साथ लगी हुई हो ! जा, जाकर सुरेश के साथ खेलो। गुस्से से इस तरह से देखती है जैसे मैं कुछ मंजू से छीन-झपट रही हूँ। सुबह मंजू को मैंने टाफियां दी तो उसके हाथ से छीनती हुई मुझसे बोली—सुबह-सवेरे कुछ और खाने को नही है जो गोलियाँ खिलाकर पेट भरना चाहती हो…न हो तो नाश्ते के लिए पूरी-कचौरी मैं मँगवा लेती हूँ इसके लिए। हलवाई कोई दूर तो नही, यही गली के नुक्कड़ पर ही तो है। मेरे बच्चे ऐरा-गैरा खाकर पेट नही भरते, नाश्ते के समय अण्डा, टोस्ट, हलवा और दूध लेते हैं। कहते-कहते मुझे ऐसे देख गयी कि बस कुछ पूछो नही। दूसरो को दुःख देकर न जाने पुष्पा चाची को क्या मिल जाता है ?" गुस्से और आवेश से सुनीता काँप-सी रही थी।

लता ने उसका हाथ पकड़ते हुए सहज बनते हुए कहा—"पुष्पा भाभी का स्वभाव ही ऐसा है सुनीता, तुम बुरा मत मानो। थोड़े दिनो की बात

है। ये दिन तो सबर से काटने ही हैं।" कहने के साथ ही उसका स्वर आर्द्र हो आया। दुपट्टे के पल्लू से अपनी आँखें पोंछती हुई बोली—"माँ के रहते कभी ज्यादा आना नही हुआ। और वैसे भी अपने को कुछ अलग-सा समझती है, इसीलिए रोष और क्षोभ उगलने का अवसर ढूंढती हैं।"

"मैं तो कल से स्कूल जाना शुरू कर दूंगी। माँ ने और छुट्टी लेने को कहा था; मगर नही—इन लोगों के बीच रहकर हर वक्त ताने ही सुनने पड़ेंगे। आप भी जरा माँ से कह देना कि स्कूल जाने से मुझे रोकें नही।"

"मैं भाभी से कह दूंगी! वैसे भी तुम्हारे बोर्ड के इम्तहान हैं, पढ़ाई का नुकसान नही होना चाहिए। जाओ अब अपने कमरे मे जाओ। मैं रसोई में जाकर भाभी को देखती हूँ।"

रात का खाना जल्दी ही निबटा दिया गया था और तीनों भाई बैठक में बैठे बेजी की बातें सुन रहे थे। सुबह-सबेरे माँ की अस्थियाँ लेकर हरिद्वार जाना होगा। बेजी सिलसिलेवार सब कुछ बताये जा रही थी और उधर पुष्पा दरवाजे के पीछे खड़ी सब सुन रही थी। दान-दक्षिणा, पण्डितों को खिलाने-पिलाने का खर्च कौन करेगा, इस जानकारी के लिए वह अधीर भी थी और उत्सुक भी। बेजी के ऊपर उसे रह-रहकर गुस्सा आ रहा था जो इतनी लम्बी लिस्ट सुनाये जा रही थी। तीनों भाई अकेले कैसे जायेंगे? तीन अशुभ माना जाता है, इसी से एक का साथ और होना चाहिए। इसी की बात हो ही रही थी कि लता ने आकर धीरे से कहा—"भइया···मैं भी साथ चलूंगी।"

"क्या? क्या कहा?" बेजी का स्वर तीखा और आश्चर्य से भरा हुआ था—"लड़कियाँ भी कभी माँ की अस्थियाँ लेकर हरिद्वार जाती हैं? यह काम बेटों का होता है। उस भाग्यशाली के तीन-तीन बेटे है। यह पुण्य का काम बेटे ही करते हैं। लड़की बोझ मानी जाती है। जाओ, जाकर आराम करो, इस काम में तुम्हारा दखल देना जरूरी नहीं।"

हतप्रभ-सी लता वही ठिठकी रही। बेजी इस तरह उसे अपमानित करेंगी इसकी उसे आशा नही थी। और बड़े भइया भी कुछ नही कह रहे,

यह देख उसे रोना आ गया। मगर आँसुओं को पीते हुए उसने तलखी से कहा—"माँ मेरी भी तो थी, और मैं कोई बच्चा नहीं हूँ जो यह सब न समझ सकूँ। ठीक है, मैं नही जाऊँगी···मगर एक बात बेजी आप भी याद रख लो। इस दिन के बाद इस घर में आपकी कोई बात नही सुनी जायेगी।" कहने के साथ ही लता वहाँ से तेजी से बाहर दालान में आ गई। लता को अपमानित होते हुए देख पुष्पा को उस पर तरस खाने का अवसर मिल गया। वह उसके पीछे-पीछे आती हुई उसके कंधे को पकड़ती हुई बोली—"रो मत लता, रो मत! बेजी तो हैं ही ऐसी। दुखे हुए दिल पर चोट करना कोई इनसे सीखे। हम बहुएँ हैं, मगर जबान सिये हुए बैठी हैं। जाने को तो हम भी जा सकती हैं? मगर इस बूढ़ी के आगे कुछ कहते नही बनता।"

लता का मन हुआ कि वह पुष्पा भाभी का हाथ कन्धे पर से झटक दे। जले पर नमक छिडककर इसे भी मजा आ रहा है। अवसर देख हमदर्दी उमड़ आई है। दो दिन बीत गए, पास तो फटकी नही, अब आ गई है सहानुभूति दिखलाने। मगर प्रत्यक्ष मे कुछ कहते नही बना। पुष्पा उसकी पीठ पर हाथ फेरती हुए कहे जा रही थी, "तुमने भी अच्छी-खरी सुना दी है, इज्जतदार हैं तो फिर कुछ नही बोलेंगी। तीनो के बीच बैठी प्रधान बनी हुई हैं और वह भी देखो तीनो के तीनों चुप लगाए बैठे हैं। बहिन की तरफदारी करने के लिए मुँहतोड़ जवाब नही दे सकते थे तो कम से कम बेजी को इतना तो कह ही सकते थे कि बेचारी को दुखी मत करो बेजी··· माँ के सदमे से वह वैसे ही अधमरी हो रही है? कहना ही था तो जरा ठीक तरह से तो कहती···।"

लता कडवाहट से भर उठी! कह देने से जो रोष-क्षोभ उगल दिया जा सकता था, वह भीतर ही भीतर उसे प्रताड़ित किए जा रहा था। मन का सन्तुलन बनाए रखने के लिए जिस धीरज की आवश्यकता थी वह धीरज वह खो चुकी थी। इसी से उसका हाथ पीठ पर से पीछे हटाती हुई वह तेजी से वहाँ से चल पड़ी।

ऊपर छत पर आते ही वह औंधे मुँह चारपाई पर आकर लेट गई। उमा छत की मुंडेर के आसपास चहलकदमी कर रही थी। लता को देखा

तो सहमी-सी कुछ देर खड़ी रही। लता सिसक रही थी। एकाएक कुछ कहने को सूझा नहीं। कुछ देर योंही खड़े रहने के पश्चात् वह चारपाई पर बैठती हुई उसके बालों में उँगलियाँ फेरती हुई बोली—"क्या हुआ लता···कुछ कहोगी नहीं···"

लता से रहा नहीं गया, एकाएक उठकर वह भाभी से लिपटते हुए रो पड़ी···जितनी देर वह रोती रही, उमा चुपचाप उसके बाल और पीठ सहलाती रही। जब कुछ बोझ हलका हुआ तो बोली—"मैं यहाँ छत पर ही तो थी, मेरे पास न आकर तुम नीचे क्यों चली गईं। मैं जानती हूँ उन लोगों ने तुम्हारा दिल दुखाया है। सुनीता ने आकर बताया था कि बेजी ने तुम्हें डाँटा है···"

लता सुबकती हुई बोली—"बेजी की डाँट से रोना नहीं आ रहा भाभी···रोना तो···" आगे के शब्द तो बीच में ही रह गये। पुष्पा ऊपर आ चुकी थी और दनदनाती हुई कह उठी—"यहाँ तो सब उल्टा ही चक्कर है। बेजी ने डाँट लगाई, वह तो सब सह गई। चुप कराने लगी तो झटका मुझे ही दे आई। अच्छे का फल यही होता है।"

उमा ने आजिजी-भरे स्वर में कहा—"प्लीज दीदी···चुप हो जाओ ···कौन किसी को क्या कुछ कहता है यह लेखा-जोखा रहने दो। लता यहाँ शिकायत करने नहीं आयी है।"

"हाँ···हाँ, हम तो बुरे हैं ही, तुम ही इसकी सगी हो, तभी तो जेठानी जी ने तुम्हारा बिस्तर यहीं छत पर ही लगवा दिया है। मैं तो कुछ हूँ ही नहीं इसकी···" कहते-कहते पाँव पटकती पुष्पा नीचे उतर आई।

उमा ने लता को आश्वासित करने के ढंग से कहा—"तुम चिन्ता न करो, पुष्पा अपने आप ही ठीक हो जायेगी। उसका गुस्सा उस उफान की तरह है जो गर्मी खाते ही उबल उठता है। फिर अपने आप ही शान्त हो जाता है। देखना, थोड़ी देर बाद ठीक हो जायेगी। जबान से जितनी कड़वी है, मन उतना ही साफ है।" लता बोली नहीं। उमा उसकी बाँह पकड़ते हुए बोली—"चलो उठो मुँह-हाथ धो लो और आराम से सो जाओ। मैं बिस्तर लगा देती हूँ।"

"नहीं भाभी, मैं बिस्तर बिछा लूँगी, आप बैठिए! सुनीता के आने

पर मैं सो जाऊँगी।"

उमा को लगा, यही अवसर है लता से बात करने का। बहुत-सी बातें थीं पूछने की। माँ के रहते जिस बात का कभी कोई विचार भी नहीं आया था, वही बातें अब उसे एक बहुत बड़ी जिम्मेदारी-सी महसूस हो रही थी। लता का क्या होगा, विवाह हो जाता तो कोई बात ही नहीं थी, मगर अब! अब सारी उमर क्या यही बितानी होगी?

मगर क्यों? ऐसा क्यों सोचा जाए? उसने लता की ओर ध्यान से देखा तो लगा कि अभी ऐसी कोई बड़ी तो नहीं दीखती। माना कि उमर अठाइस-तीस के लगभग है। मगर देखने में इतनी नहीं लगती। आजकल की काम-काज वाली लड़कियों की उमर लगभग इतनी तो हो ही जाती है। कुछ परिस्थितियों के कारण और कुछ संयोग ही नहीं बनते।

उसे याद आया, माँ जी ने एक बार यही बात कही थी—संयोग बनते-बनते रह जाते हैं उमा। पहले तो यह लड़की ही नहीं बात चलाने देती थी। कोई लड़का ही पसन्द नहीं आता था। और अब ज्यों-ज्यों उमर बढ़ती जा रही है तो लोग पूछने लग जाते हैं कि अभी तक कुआरी क्यों बैठी रही…? कोई न कोई बात तो होगी ही। अब किस-किससे कहा जाये कि हमारी लड़की ही किसी को पसन्द नहीं कर सकी! लाड़ली बेटी—तीन भाइयों की छोटी बहन। देखने में सुन्दर, बातचीत में भी सलीकेदार और फिर भी अभी तक बिन ब्याही बैठी है।

माँ जी को सचमुच इस बात का बहुत दुख रहा होगा। उमा सोचती-सी निगाहों से लता की ओर देख रही थी जिसे लता भी महसूस कर रही थी। लता ने उससे पूछा—"क्या सोचे जा रही हो भाभी?"

उमा ने मुस्कराने की चेष्टा में कहा—"तुम्हारे लिए एक अच्छे वर की कल्पना कर रही हूँ।"

"छोड़ो भाभी…अब यह कल्पना करना ही व्यर्थ है · बेकार में परेशान होती रहोगी। आप सोचना छोड़ दीजिए…"

"क्यों, आखिर क्यों?" उमा ने जोर देते हुए दृढ़ता से कहा।

एक लम्बी साँस लेते हुए लता बोली—"मेरी जन्मपत्री में उसके लिए कोई स्थान नहीं बनाया गया…विधाता ने यह जगह खाली ही छोड़ दी

है···माँ ने दो बार मेरी जन्मपत्री बनवाई थी और दोनों बार निराश ही हो गयी।"

"मगर तुम्हें तो निराश नहीं होना चाहिए। अपना भाग्य अपने हाथ में होना है लता···।"

"मगर मेरे हाथ की रेखाओं में भी तो यह रेखा नहीं है। ज्योतिषी ने भी यही कहा था···"

"अगर तुम चाहो तो यह रेखा भी खींची जा सकती है।"

"नहीं भाभी, अब तो यह सब सोचना भी बेकार है। आपको शायद मालूम नहीं कि मैंने एक फैक्टरी में काम करना शुरू कर दिया है। रेडिमेड गारमेंट फैक्टरी है। पहिले तो माँ मानती नहीं थी, मगर मेरे बहुत जोर देने पर और भाई साहेब के कहने पर मान गयी।"

"कब से शुरू किया है?"

"कोई आठ-नौ महीने तो हो ही गए हैं। अच्छी जगह है और पैसे भी ठीक मिलते हैं। फिर दिल भी लगा रहता है। क्यों, अच्छा किया है न?"

"हाँ, अच्छा है।". उमा के स्वर में उत्साह नहीं था, निराशा भी नहीं थी। एक ऐसा उच्छ्वास था जो अनभिज्ञता के कारण किसी दूरी का आभास दे देता है। उमा ने मन-ही-मन सोचा, महेश को भी मालूम नहीं होगा। होता तो अवश्य ही बात करते। और माँ जी ने भी हम लोगों से पूछने की या बताने की जरूरत नहीं समझी होगी। सोचती होंगी, राय लेने और देने वाले हम है ही कौन?

उधर नीचे से पुष्पा के बच्चों के झगड़ने की आवाज आ रही थी और पुष्पा जोर-जोर से डाँट रही थी—"गर्मी लगती है तो मैं क्या करूँ? इधर कूलर तो है नहीं जो तुम लोगों को उसके आगे डाल दूँ। सोना है तो सो जाओ···वरना जाओ बाहर सड़क पर जा बैठो।"

"चिल्ला क्यों रही हो?" यह आवाज नरेश की थी।

उमा चट से नीचे उतर आई और बच्चों का हाथ पकड़ती हुई बोली—"चलो सुरेश, ऊपर छत पर चलो, वहीं बिस्तर लगा देती हूँ।"

"नहीं, रहने दो यहीं··" पुष्पा गुस्से में भरी हुई थी। इन बच्चों को यहीं सोना है, इसी दालान में। इनके लिए कोई दूसरी जगह नहीं।

इतना ख्याल होता इनका तो कल न ले जाती अपने साथ !"

"मगर ऐसी भी क्या बात हो गयी है, दो दिन भी सबर से नहीं काटे जा सकते !" नरेश को भी गुस्सा आ रहा था। बच्चे दोनों सहमे-से चारपाइयों पर लेट गए थे।

तभी सोहागवती स्टोर में से टेबल फेन उठा लाई और बोली—"नरेश देखना, बरामदे मे जो स्विच बोर्ड है उसमें यह प्लग लग जायेगा ? न हो तो इन बच्चों की चारपाई बरामदे में ही खींच लो।"

"हाँ, यह ठीक है ···।" बच्चों की चारपाइयाँ बरामदे में लगा दी गईं और पंखा चला दिया गया। पुष्पा वहाँ से खिसक गई और नरेश भी बैठक में चला गया।

तमाशा बनते-बनते रुक गया था। कहीं पुष्पा कुछ और कह देती और नरेश भी आपा खो देता तो क्या हो जाता ? उमा ऐसे तमाशे बहुत बार देख चुकी थी, इसीलिए परेशान हो रही थी। उधर सुनीता कमरे में खड़ी आलमारी खोलती हुई पूछ रही थी—"मम्मी, और क्या-क्या रखना है वह भी बता दो।"

सुनीता के हाथ मे थैला देख उमा ने पूछा—"क्या बात है सुनीता ?"

सोहागवती पास आते हुए धीरे से बोली—"मैं इनके साथ सुबह हरिद्वार जा रही हूँ उमा ! बेजी कहती हैं—तीन जने जाएँगे तो ठीक नहीं··· इसीलिए सोचा मैं ही चली जाऊँ।"

"आप लोग वापस कब तक आओगे ?"

"सुबह-सवेरे ही निकल जायें तो वक्त पर पहुँच जायेंगे। फिर शाम तक वापस भी आ सकते हैं। महेश कह रहा है, चार-पांच घण्टे लगेंगे पहुँचने में। सुबह पाँच साढ़े पाँच बजे निकल जायें तो दस बजे तक आराम से वहाँ पहुँच जायेंगे।"

"वह हैं कहाँ ?"

"गाड़ी मे पेट्रोल भरवाने गया है। पहले तो सोच रहे थे कि किसी ड्राइवर को ले लें। मगर एक तो ड्राइवर मिला नहीं, दूसरे महेश कहने लगा, मैं गाड़ी खुद चलाऊँगा।"

"हाँ···यह अपनी गाड़ी किसी दूसरे के हाथ में नहीं देते।"

सोहागवती ने धीरे से कहा, "पुष्पा नाराज-सी लगती है। मुझे तो डर है कि कहीं इस बात का भी बुरा न मान जाये कि मैं साथ में जा रही हूँ।"

"उसे मालूम नही क्या?"

"पता नही...बेजी ने शायद बता दिया हो। मगर मैंने अभी बात नहीं की। उसका मूड देख चुप लगा गई।"

"ठीक है...मैं सुबह ही बात कर लूंगी। अब इस वक्त तो बात करना बेकार है, वह यों भी कुछ चिढ़ी हुई है।"

सुनीता थैला लेकर आ चुकी थी और वह कह रही थी—"एक सलवार, कमीज और एक साड़ी रख दी है। पापा के लिए धोती भी नहाने के लिए रख दी है।"

"वहाँ नहायेंगे क्या?" उमा ने आश्चर्य से पूछा।

"हाँ, सभी को नहाना होगा, इसीलिए मैंने नरेश और महेश के लिए भी धोतियां निकाल रखी हैं। उमा, तुम महेश से पूछ लो, कुछ और रखना हो तो इस अटैची में रख लो। तीनों के लिए एक ही अटैची बनाई है। तौलिए आदि रख दिये हैं, बाकी जो लेना होगा वहीं से मिल जायेगा।"

"बेजी सो गयी हैं क्या?"

"पता नही, वह उधर आगे वाले बरामदे में थी—शायद लेट गयी हों।"

"लेटी कहाँ हैं, बैठी हैं वह तो, साथ वाली मिसेज कपूर के साथ बातें कर रही थी। कल मैंने दूध के लिए पूछा था तो डाँट लगा दी थी और आज खुद ही पूछ रही थी—सुनीता, अरी जरा एक गिलास दूध ले आना, हाँ इलायची वाला बनाना।...और खूब अच्छी तरह से उबाल कर देना।"

"तो बना दिया कि नही?" उमा ने पूछा तो सुनीता चट से बोली—"बनाती न तो क्या करती! मन तो हुआ कि कह दूँ, मेरे से नहीं होता, लेकिन फिर सोचा कि चलो बना ही दूँ, वरना गालियाँ निकालती रहेंगी।"

"ऐसे नही कहते, तुम्हारी वह नानी भी लगती हैं।"

"नानी लगती हैं...तभी तो देख नही सकतीं। दूध लेकर जब गई तो

कहने लगी—"करनाल में खूब अच्छा दूध मिलता है। पाव-भर दूध मे भी मलाई की मोटी तह आ जाती है। और इधर, इधर की डेरी के डिपो का दूध तो पानी से भी हल्का है, मैं तो इसे छूती ही नही। मगर क्या करूँ, जब से आँख का आपरेशन करवाया है तभी से सिर मे दर्द रहने लगा है। दूध तो मेरे लिए एक दवाई है। तब मैंने भी कह दिया तो दवाई समझकर ही पी लीजिए बेजी, हल्के-पतले की मत सोचिए···"

"तुम भी अव्वल दर्जे की बड़बोली हो, जो मुँह में आता है बक देती हो! कितनी बार समझाया है कि बड़ों के आगे ऐसे जवाब नही दिए जाते। तुम्हारा क्या जायेगा···जूतियाँ पड़ेंगी तो मुझे ही।" सोहागवती गुस्से और लाचारी से क्षुब्ध-सी हो उठी।"

उमा ने समझाने के से ढग से कहा—"भाभी, आप घबराइए नहीं, सुनीता मेरा कहना मानती है और मैं इसे समझा दूँगी—बड़ो के साथ जवाब-सवाल नही किया करते।"

"यह सुनीता समझती है, पर फिर भी बेजी से उलझ पड़ती है।"

"ठीक है, आगे से कुछ नही कहूँगी चाची, मैं वायदा करती हूँ। बेजी से बात भी नही करूँगी।" यह कहते हुए उसे हँसी आ गयी। फिर मुँह पर हाथ रखते हुए वह भाग खड़ी हुई···।

"चलो उमा, तुम भी सो जाओ जाकर। सुबह हम लोगो को भी जल्दी उठना है।"

उमा ने एक नजर बैठक की ओर डाली, अन्दर कूलर चल रहा था और सोमेश भाई टेबल लैम्प के पास बैठे कुछ लिख रहे थे।

सोहागवती ने उसे झाँकते हुए देखा तो एकाएक कुछ याद करती हुई बोली—"सुबह मनोज का फोन आया था पिलानी से। माँ जी के देहान्त की खबर सुन उसे गहरा दुख पहुँचा है। फोन पर बात ठीक से कर ही नही सका। तुम्हारे जेठ जी उसी को चिट्ठी लिख रहे हैं।"

"ओह···!" उमा ने अभी तक मनोज के बारे में कोई बात नही की थी। पूछा भी नही कि मनोज को मालूम भी है कि नहीं। अपनी अनभिज्ञता छिपाने की चेष्टा मे बोली—"मनोज का माँ जी से बहुत प्यार था।"

"इस घर में सबसे चहेता और सबसे बड़ा पोता यही तो है। और ऐन वक्त पर वह भी यहाँ नहीं था। मैंने तो कहा था कि उसे बुला लिया जाये, मगर तुम्हारे भाई साहब कहने लगे—इतनी जल्दी वह आ नहीं सकेगा। गर्मियों के दिनों में माँ जी को ज्यादा देर रखा भी तो नहीं जा सकता···" कहते-कहते सोहागवती की आवाज भारी हो आयी, फिर अपने को सँभालने की कोशिश में बोली—"जाने से दो दिन पहले बिलकुल ठीक थी, लगता था कि अब आराम हो रहा है। पर एकाएक सिर में दर्द उठा—दर्द भी क्या था जानलेवा दर्द। दर्द की तड़प के साथ ही बेहोश हो गयी। होश आयी ही नहीं, बेहोशी में ही चल बसी···"

उमा ने कोई सवाल नहीं किया। जालन्धर से चलते समय यही समझा गया था कि हार्ट फेल हो गया था, मगर यहाँ आते ही मालूम हुआ कि दिमाग की नस फट गयी थी। कुछ भी हो, इन लोगों ने पहले हमें इतलाह नहीं दी। इसकी शिकायत महेश को भी थी और उसे भी, लेकिन परिस्थितियों के अनुकूल न होने के कारण उससे पूछा भी नहीं गया। कहते भी क्या। मुद्दत से पत्र-व्यवहार भी तो नहीं हुआ था और माँ जी इस बात के लिए उनसे नाराज भी थीं। उमा ने कलाई पर बंधी घड़ी देखी फिर जल्दी से बोली—"अरे, ग्यारह बजने को हैं! चलिए भाभी, आप सो जाइए, सुबह जल्दी ही उठना है।" यह कहकर उमा धीरे-धीरे सीढ़ियाँ चढ़ आयी।

ऊपर छत पर सन्नाटा था। लता सो गयी थी और सुनीता भी लेटी हुई सोने के उपक्रम में थी। उमा को लगा, नींद धीरे-धीरे उससे दूर होती जा रही है। पंचमी का चाँद दूर क्षितिज की ओर से ऊपर उठ रहा था। एक धीमी-हल्की चाँदनी उस सन्नाटे को सूँघती-सी छत पर फैल गयी थी। चारों ओर एक निस्तब्धता-सी छाई हुई थी। नीचे जिस उमस के कारण शोर हुआ था और जिसके लिए वह नीचे उतर गयी थी, इस चाँदनी को देख उसे अपने पर ही झुंझलाहट हो आयी। इतना अच्छा माहौल छोड़ नाहक ही नीचे जा भागी। न भी जाती तो कुछ फर्क पड़ने का नहीं था। कुछ ऐसा अनुभव लेकर तो न आती जिसकी कचोट अब मुझे रात-भर सोने नहीं देगी। कुछ देर यों ही टहल लेने के पश्चात् भी उसे नींद का

आभास नहीं हो रहा था। जूड़े में बँधे बालों को खोलते हुए उसने सोचा, नींद की गोलियाँ तो हैं ही। क्यों न एक गोली ही ले लूं! तीन रातें यों ही जागते हुए बीत गयी हैं। आज भी न सोई तो कल तबीयत खराब हो जायेगी। जूड़े से पिन निकाल उसने मुंडेर पर रख दिये और पानी का गिलास ले वह कमरे में आ गयी। सूटकेस खोला, उसने शीशी में से दो गोलियाँ निकालीं और फिर कुछ सोचकर एक शीशी में डाल दी—नहीं, एक ही काफी है, दो ले लीं तो सुबह नींद नहीं खुलेगी। सुबह उन लोगों को चाय तो देनी ही है, वरना क्या कहेंगी भाभी, एक दिन भी जल्दी नहीं उठ सकी।

सुबह जब वह उठी तो दोनों चारपाइयाँ खाली देख चौंक पड़ी? क्या वक्त हो गया है? घड़ी देखी तो हैरान हो उठी···साढ़े छः बज गये! और मैं सोती ही रह गयी। दुपट्टा सँभाल वह तेजी से नीचे उतर आयी। यह देख उसके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा, पुष्पा दालान में रखी कुर्सी पर बैठी चाय पी रही थी और उसके आगे मेज पर रखी प्लेट में बिस्कुट पड़े थे।

पुष्पा ने बिस्कुट का टुकड़ा मुंह में डालते हुए पूछा—"उमा, चाय पियोगी···केतली चढ़ा रखी है चूल्हे पर।"

"वह लोग चले गये क्या?"

"कब के चले गये···चार बजे उठी थी मैं। उठकर परांठे बनाये, आलू की भुजिया बनाई, फिर थर्मस में चाय भर कर दी। जेठानी जी को जबर्दस्ती परांठा भी खिला दिया है। सोचा, रास्ते-भर भूखी रहेंगी तो सिर में दर्द हो जायेगा। फिर तुम तो जानती ही हो कि खाली पेट कोई दवाई भी नहीं ली जा सकती। इसीलिए मैंने सिरदर्द की दवाई भी उनके बैग में डाल दी थी। और टिफिन में परांठे और निम्बू के अचार के साथ-साथ आलू की भुजिया भी डाल दी। परदेस का मामला है। नहाते-धोते, पूजा करते-कराते देर तो हो ही जायेगी। फिर पंडितों को दान-दक्षिणा और खाना देने-दिलाने में भी वक्त तो लगेगा ही। उस पर बाजार का खाना खाने के लिए और देर हो जायेगी। मैंने तो महेश से कह दिया है कि

ऊटपटांग खाने की जरूरत नहीं, अपना टिफिन खोलना और गाड़ी में बैठकर खा लेना।" चाय का घूंट पीते हुए उसने आगे कहा, "एक टोकरी में प्लास्टिक की प्लेटें और गिलास भी रख दिए हैं। कुछ फल पड़े थे वह भी डाल दिये हैं। जेठानी जी तो बस थैले में दो कपड़े डाले चली जा रही थीं, मैंने देखा तो रहा नहीं गया।"

"कितने बजे गये हैं यहां से ?"

"छ: बजे से पहले ही चले गये थे। अरी मैंने तो मिनटों में ही सब तैयार कर दिया था। एक ओर परांठे बनाये, चाय के लिए केतली लगा दी और दूसरे चूल्हे पर आलू की भुजिया बना दी। जेठानी जी तो हैरान ही रह गयी थी, कहने लगी—इतनी जल्दी सब कैसे बना दिया पुष्पा··· मैं तो सोच भी नहीं सकती थी।"

"सोच तो मैं भी नहीं सकती दीदी···पर आप कह रही है तो मानना ही पड़ गया है···"

"अरे मानोगी कैसे नहीं···चल आकर देख रसोई में, डिब्बे में अभी भी तीन-चार परांठे रखे हैं।"

यह वार्तालाप चल ही रहा था कि सुनीता नहा-धोकर तैयार होकर आ गयी···उसे देखते ही उमा ने पूछा—"अरे, इतनी जल्दी तैयार हो गयी ?"

"हां चाची···मुझे स्कूल जो जाना है···हां, मैंने मम्मी से कह दिया था कि मैं आज स्कूल जाऊंगी···मेरा इस बार बोर्ड का इम्तहान है। फिर घर में अब करना ही क्या है ?"

"हां बेटी, जाओ स्कूल···तुम छोटी हो, हमारे होते हुए तुम्हें क्या पड़ी है ओखली मे सिर देने की !" पुष्पा ने पुचकारते हुए ढंग से कहा।

"दीदी···यह क्या कह रही हो ?"

"हां उमा···मैं देख रही हूँ, बेजी सुनीता को हर वक्त डांटती रहती हैं। मुझे तो बहुत बुरा लगता है। पता नहीं तुम क्यों नहीं कुछ कहती बेजी से···"

उमा पुष्पा का मुंह ताकती रह गयी। पुष्पा का बदला हुआ ढंग उसकी समझ में नहीं आ रहा था। जब से वह नीचे आयी थी, तभी से वह

उसे देख-सुन कर चकित-सी हो रही थी। अब सुनीता के लिए बेजी के कहने-सुनने को सह रही है। इसी सुनीता के लिए जिसे वह स्वयं ही कई बार डाँट चुकी है।

"क्या देख रही हो?" पुष्पा ने अचकचाते हुए पूछा।

"दीदी, मुझे क्यों बीच में घसीटना चाहती हो! आपका तो पुराना रिश्ता है उनसे, पुरानी पहचान है। मैं तो उनसे पहली ही बार मिली हूँ ···फिर मैं तो आपसे छोटी भी हूँ।"

"छोटी-बड़ी का सवाल नहीं है• उमा, सोचना तो यह है कि इस घर में बेजी अब धीरे-धीरे आगे बढ़ना चाह रही हैं। रात साथ वाली पड़ोसिन को भी वह कह रही थी, इस घर में तो मुझसे पूछे बिना कोई काम नहीं होता। जो मैं कहती हूँ, बेचारे वही मान जाते हैं। भला पूछो इनसे कि माँ जी के रहते हुए तो कुछ कहने-सुनने का हक नहीं मिला। अब उनके जाने के तुरन्त बाद यह हक जमाने आ पहुँची हैं।"

उमा ने संजीदा होते हुए कहा—"हक क्या जमाना है दीदी, यह तो सभी जानते ही हैं। ब्याह-शादी का समय कुछ और होता है, मगर इन बातों के लिए रीति-रिवाज कुछ मानने ही पड़ते हैं।"

"तुमसे मैं लैक्चर सुनने के लिए नहीं पूछ रही। तुम तो ऊपर बैठी थी, जो कुछ मैंने बेजी को इन लोगों को कहते सुना है, उसी के लिए फिक्र कर रही हूँ। जानती हो···इनसे क्या कह रही थी?"

"मैंने जब सुना ही नहीं तो बोलूँगी क्या?"

"कह रही थी—ग्यारहों पंडितों को खाना खिलाना है, फिर साथ-साथ ग्यारहों या इक्कीस-इक्कीस रुपये भी उन्हें देने होंगे। फल-मिठाई अलग···। मैं तो कहने वाली थी कि इतना सब नहीं होता·· आज के जमाने में कौन इतना करता है, मगर कह नहीं सकी··"

"क्यों?"

"कैसे कहती···तुम्हारे जीजा जी जो बैठे थे बीच में···"

"ओह!" उमा दबी जबान में हँस-सी पड़ी।

"तुम्हें तो हँसी आ रही है और मेरा जी जला जा रहा है! जानती हो इन्होंने क्या कहा?"

"नहीं दीदी···मैं क्या जानूं ! मैं तो पास में थी नही···तुमने जो सुना है वही सुना दो न···"

"हां···बड़े आज्ञाकारी बने हां में हां मिलाये जा रहे थे···कहते थे—दान-पुण्य में कोई कमी नही रहेगी बेजी—आप विश्वास रखें।"

"और भाई साहब कहते भी क्या ?"

"कह क्यों नही सकते थे, इतनी महँगाई मे इतना सब खर्च करने की जरूरत ही क्या है ! बेजी तो समझती हैं जैसे रुपये कमाये नही जाते हैं, पेड़ों पर से टपक रहे हैं। मैं तो जो है सब सह रही हूं, अब तुम अपना ख्याल रखना, महेश की लगाम खीच कर रखना···जेठ जी के ऊपर तो बेजी का बस नही चलता, दो टूक जवाब दे देते हैं। कल देखा नही था उन्हें यह कहते हुए कि मनोज नहीं आ सकता बेजी। उसके फाइनल इम्तहान सिर पर आ रहे है। बेजी ने तो बड़े दावे के साथ कहा था कि बड़ा पोता है, संस्कार के वक्त नहीं आ सका तो अब तो आ सकता है; उसे बुला लो। हां, जेठ जी की जगह अगर तुम्हारे जीजा जी होते तो सात समुद्र के पार भी बेटा बैठा होता तो भी बुला लेते।"

उमा चुपचाप सुन रही थी। सुबह सवेरे पुष्पा कैसी बातें ले बैठी है ! उसका जी हुआ कि वहां से वह चली जाये। मगर पुष्पा को टालना आसान नहीं था। बात का रुख बदलने के लिए उसने पूछा—"अब बेजी हैं कहां ?"

"बरामदे मे बैठी माला फेर रही हैं।"

"नहा चुकी है ?"

"मुझे क्या मालूम !"

तभी सुनीता ने आते हुए कहा—"बेजी चाय मांग रही हैं।"

"लो और याद करो···नाम लेते ही फरमाइश आ पहुंची है।" बरबस ही हँसी आ गयी उमा को।

"तुम तो स्कूल जा रही थी फिर वापस कैसे आ गयी ?" पुष्पा ने त्योरियां चढाते हुए सुनीता से पूछा।

"अभी तो सात नहीं बजे चाची जी···पहले से बस स्टैंड पर खड़ी हो जाऊँ क्या ?"

"मुझे क्या मालूम कि तुम्हारी बस सात बजे ही आती है ?"

"कुछ खा-पी लिया है कि भूखी ही जा रही हो ?"

"चाय पी ली है···"

बात काटते हुए पुष्पा बोली—"टेस्टी टोस्ट जो बना दिये थे। वह रख लिए हैं कि यहीं छोड़कर जा रही हो ?"

"वह ले लिए हैं चाची, छोड़कर क्यों जाऊंगी, आपने इतने प्यार से बना कर दिये हैं···"

"लता कहाँ है, सुनीता ?"

"दीदी नहा रही हैं।"

"बड़ी देर लगाती है नहाने में ?"

"आप भी नहा चुकी हैं दीदी ?"

"अभी कहाँ···सुबह से तो काम में लगी रही हूँ···खाली पेट चाय नहीं पीती···इसी से दो बिस्कुट ले लिए हैं। कल खाली चाय पीकर बड़ी परेशान रही···मुझे माफिक नहीं आती···पेट में गैस बन जाती है···।"

तभी बेजो की आवाज सुनाई दी—"सुनीता, चाय लेने गयी थी क्या हुआ ?"

पुष्पा झल्लाते हुए बोली—"तुम जाओ स्कूल···चाय का इन्तजाम हो जायेगा···इतनी जल्दी मचाये जा रही हैं, जैसे नौकर बैठे हैं यहाँ।"

उमा ने जल्दी से चाय गिलास मे डाली और पुष्पा से पूछा—"दीदी, बिस्कुट भी देने हैं···कहाँ रखे हैं ?"

"बिस्कुट यहाँ कहाँ, मैंने कल दो पैकेट मँगवाये थे बच्चो के लिए··· लेने ही हैं तो जाओ···मेरा जहाँ सामान रखा है वहीं लिफाफे में रखे हैं।"

उमा चाय ले जाते हुए बोली—"मैं जाकर पूछ लेती हूँ···कहेगी तो ले जाऊंगी।"

"अरी पूछना क्या है···ले ही जाओ···तुम्हें मुश्किल लग रहा है तो ठहरो मैं निकाल देती हूँ···" कहते हुए पुष्पा कमरे की ओर चल दी।

"दस बज रहे हैं और वह लोग अभी तक नहीं आये, कहीं रास्ते में गाड़ी ही खराब न हो गयी हो!"

पुष्पा, लता, उमा अभी चिन्तित हो रही थी। उधर बेजी चारपाई पर लेटी हुई बार-बार पूछ उठती—"अरी ओ सुनीता, पापा तुम्हारे अभी तक नहीं आये?"

सुनीता भन्ना उठी—"पापा ने क्या अकेले आना था?" चिन्ता में मन वैसे ही व्याकुल हो रहा था और ऊपर से बेजी परेशान किए जा रही थीं। पहले बरामदे में चारपाई डालती रही हैं और आज बैठक में कूलर के आगे आ लेटी हैं। एक तो कूलर का शोर और दूसरा बेजी की आवाजें। "मैं तो तंग आ गयी हूँ जवाब देते हुए कहा!" सुनीता बुदबुदा रही थी और लता चिन्ता, गुस्सा और क्षोभ से वैसे ही विचलित हो रही थी—"बेजी न आती तो क्या हो जाता? जीते जी तो माँ की कभी खबर नहीं पूछी···चली गयी हैं तो शोक मनाने आ पहुँची हैं!" उसका वस चलता तो वह कह उठती—बेजी मेहरबानी करके चुप रह जाइये···लेकिन गुस्सा दिखाने की स्थिति नहीं थी। इसी से वह और भी अधिक अपने आपको विवश महसूस कर रही थी।

उमा रह-रहकर बाहर जाती, फिर भीतर आ खड़ी होती—इतनी देर कैसे हो गयी? उधर पुष्पा कहती जा रही थी—"अपनी कार ले जाने की जरूरत ही क्या थी! इससे तो अच्छा था बस में ही चले जाते। अब तीन-तीन की जगह पर चारों को जाना पड़ा···"

मंजू और सुरेश भी सोये नहीं थे, कमरे की खिड़की में बैठे उनके आने की बाट जोह रहे थे।

"यह बच्चे भी एक नहीं सुनते—बैठे हैं खिड़की में! कितनी बार कहा है कि सो जाओ, मगर मेरी तो सुनते ही नहीं। सुबह सुरेश कह रहा था, मुझे क्यों नहीं भेजा पापा के साथ?"

तभी सुरेश कमरे से भागता हुआ दालान में आते हुए बोला—"मम्मी ···पापा लोग आ गये···"

कार बाहर गेट पर आ पहुँची थी। सुरेश, मंजू और सुनीता कार के पास खड़े थे। सोहागवती के हाथ में टोकरी थी जिसमें हरिद्वार का

प्रसाद और गंगाजली थी। बेजी को भी भनक पड़ गयी थी और वह लेटी हुई ही चिल्लाये जा रही थी—"अरी···ओ सुहाग···पहले गंगाजल छिड़क दो ड्योढ़ी में···तब आने दो ··"

बच्चों ने सामान भीतर पहुँचा दिया था और तीनों भाई भी अन्दर आ चुके थे···पहला सवाल पुष्पा ने किया—"इतनी देर कैसे लगा दी?" जवाब मिलने से पहले दूसरा सवाल भी कर दिया—"खाना लगा दूँ·· या वही खा-पी आये हैं?"

"पहले बैठ तो लेने दो···!"

सोहागवती ने धीरे से कहा—"खाना नही खायेंगे पुष्पा···हाँ, जरा मेरे लिए चाय बनवा दो···सिर में जोरों का दर्द हो रहा है···"

"आप ही नहीं खायेंगी कि सभी को नही खाना?"

"हम खाना खाकर आये हैं पुष्पा, तभी तो देर लग गयी···मेरठ में खाना खाया है···"

"इतनी देर वहाँ रुक गये, इससे तो अच्छा था सीधे घर ही आ जाते।"

"सुबह से कुछ खाया नही था···"

पुष्पा ने टिफिन की ओर देखा तो एकाएक बोल उठी—"सुबह क्यों नहीं खाया? टिफिन में तो खाना भर दिया था···" कहने के साथ ही उसने टिफिन उठाया तो मालूम हुआ खाना टिफिन में ज्यों का त्यों ही रखा है।"

"यह क्या, खाना किसी ने खाया ही नही···?"

"दिन-भर वक्त नही मिला और जब शाम को टिफिन खोला तो खाने में भड़ास आ रही थी···"

"गर्मियों के दिन···और भरी दोपहरी, बन्द गाडी मे रखा खाना खराब न होता तो और क्या होता! सारी मेहनत बर्बाद हो गई। सुबह चार बजे इसीलिए उठी थी···" पुष्पा बुदबुदाती हुई रसोई मे जा पहुँची···। टिफिन को पटकती हुई उमा से बोली—"अब जो जिसके लिए चाहिए·· तुम ही बना-पिला दो···मैं तो जा रही हूँ सोने ··सुबह चार बजे की उठी हुई हूँ···"

उमा ने चाय बनाकर सोहागवती को दी तो पूछा—"कोई दवाई वगैरा लेंगी···"

"गोली तो दो बार ले चुकी हूँ। सुबह पुष्पा ने दी थीं···मगर सिर है कि फटा ही जा रहा है···।"

लता ने निम्बू का शर्बत बनाकर भाइयों को दिया। तीनों भाई बैठक मे ही कालीन पर बिस्तर बिछाकर सोते थे···अब भीतर गये तो देखा बीचोबीच बेजी की चारपाई लगी है। महेश बाहर आकर उमा से पूछने लगा—"यह बेजी क्यों सो रही है अन्दर ?"

"उनकी मर्जी···हमने तो सोने के लिए कहा नहीं।"

"आप लोगों ने कहा नहीं तो मना तो कर देते···अब हम लोग कहाँ सोयेंगे ?"

"खुद ही कह दो न जाकर···"

"अब सोई हुई को उठायें कैसे···?"

सोमेश और नरेश भी दुविधा मे बैठे थे··· न बिस्तर बिछाये बनता था और न उन्हें उठाया जा सकता था···बाहर चारपाइयाँ भी इतनी नही थीं जो दालान में आकर सो जाते।

नरेश को एक बात सूझी···लता से बोला—"ऊपर तीन चारपाइयाँ हैं न, ऐसा करते हैं तुम लोग आज बैठक में सो जाओ और हम तीनों ऊपर छत पर खुली हवा मे सो जाते हैं···।"

पुष्पा दालान मे बिछी चारपाई पर लेटी सब सुन रही थी···एकाएक उठती हुई बोली —"बाहर गर्मी में तपने के लिए मैं ही रह गयी हूँ न ·· यह सब कूलर की ठण्डी हवा लेंगी और मैं बाहर लेटी झुलसती रहूँगी ·· मैं भी सोऊँगी अन्दर।" कहने के साथ ही उसने अपना तकिया और चद्दर आदि उठाई और बैठक में जा पहुँची। नीचे कालीन पर एक ओर भारी-भरकम गद्दे रखे हुए थे और बीचोबीच ही बेजी सो रही थी। पुष्पा ने उमा को आवाज लगाई—"उमा, जरा इधर तो आओ···"

"क्या है दीदी ?" उमा ने झल्लाते हुए कहा, तो पुष्पा भी असहज होती हुई बोली—"अरी सोना है यहाँ तो गद्दे तो बिछाने ही हैं···अकेली से तो उठेंगे नही···"

"मगर लगाने कैसे हैं ? गद्दे तीन ही हैं और हम हैं चार···"

"अरी यह कोई मुश्किल बात नहीं, तीनों गद्दे साथ-साथ कर लेते हैं। मगर मुश्किल तो यह है कि इस चारपाई का क्या किया जाये। बिछानी भी थी तो एक ओर तो बिछाती। सारा कमरा रोक रखा है। इस बुढ़ापे में कूलर की हवा क्या खाक रास आयेगी ! मैं तो कहती हूं दोनों मिलकर इनकी चारपाई उठाकर बरामदे में ले जायें।"

"क्या ?" उमा को हँसी आ गयी···उधर लता और सुनीता भी कमरे के दरवाजे के पास खड़ी खिलखिलाकर हँस दी।

उमा भीतर ही भीतर हँसे जा रही थी, मुंह से आवाज न निकले, इसका भरसक प्रयत्न कर रही थी। मगर शरीर बेकाबू-सा हो रहा था। पेट पकड़े वह धम से नीचे बैठ गयी तो पुष्पा ने उसकी बाँह पकड़ते हुए कहा—"अब उठो भी, चलो चारपाई उठवाओ ··"

"मुझसे नहीं उठेगी यह चारपाई···" कहते हुए उसकी हँसी बरबस ही फूट पड़ी।

"ठीक है, मत उठो···मैं खुद अकेली ही यह काम कर सकती हूँ···" कहने के साथ ही वह बेजी के सिरहाने जा खड़ी हुई। वह उन्हें उठाने को ही थी कि सुनीता तेजी से उसके पास आती हुई बोली—"रहने दो चाची, मैं और लता चारपाई उठाकर एक ओर कर देती हैं।" फिर उसने लता को इशारे से बुलाया और दोनों ने बेजी की चारपाई उठाकर दरवाजे के एक ओर लगाने की कोशिश की।

गो-गों की आवाज निकालते हुए हड़बड़ाती हुई-सी बेजी उठकर बैठ गयी। चारपाई के हिलने-डुलने की क्रिया तक तो वह झूला झूलती-सी सोती रही थी, मगर नीचे रखने के उपक्रम में एक दुःस्वप्न को देखती-सी चिल्ला उठी—"चो ··र···चोर···चोर···"

दोनों लड़कियाँ बुरी तरह से घबरा उठीं···उस घबराहट में चारपाई उनके हाथों से फिसलकर धम्म से नीचे फर्श पर जा लगी···और बेजी अपना सन्तुलन खोते हुए एक ओर को लुढ़क गयी।

उमा को काटो तो खून नहीं जैसी दशा हो रही थी और पुष्पा खड़ी-खड़ी तमाशा देख रही थी···

बेजी बुरी तरह से चिल्ला उठी—"कम्बख्तो, सिर फोड़ डाला है··· हाय, राम···अरे···कोई है···"

लड़कियाँ बाहर दालान में आकर छिपती-सी दीवार के साथ लगी थी···सिर पर कपड़ा बाँधे सोहागवती सो रही थी। भीतर का खटका उसने सुना नही था, मगर बेजी के चिल्लाने की आवाज सुन वह भी जाग पड़ी थी और इधर-उधर देखती हुई पूछने लगी—"क्या बात है···बेजी को क्या हुआ ? अरी ओ सुनीता···अरी देखो तो, बेजी क्यों रो रही हैं···!"

लता जल्दी से भाभी के पास आकर बैठती हुई बोली—"आप सो जाइए भाभी · बेजी यों ही नीद मे चिल्ला उठी हैं···कोई बुरा सपना देखा होगा···आप सो जाइए···पुष्पा भाभी और उमा भाभी यहीं हैं··।"

"पुष्पा-उमा यही हैं क्या ?"

"हाँ···आप फिक्र मत करो···वह यही सो रही हैं, भइया लोग ऊपर छत पर चले गये हैं।"

"और आप दोनों ?"

"हम भी सो वहीं जाएँगे सोने को ! मेहरबानी करके अब आप सो जाओ नही तो सिर में दर्द ज्यादा हो जायेगा।"

सोहाग का सिर दबाते हुए लता को बेजी का विचार आते हुए फिर से घबराहट हो आयी।

'उन्हे कही सिर में चोट तो नही आयी ?' यह सुनीता से कहना चाहती थी कि जाओ अन्दर जाकर देखो। मगर भाभी कहीं फिर न पूछ बैठें, इसलिए चुपचाप उनका सिर दबाती हुई बैठी रही।

तभी पुष्पा दालान की ओर आती हुई दिखायी दी। फिर सीधी रसोई की ओर बढ़ गयी। धीरे से रसोई का दरवाजा खोल बत्ती जलाई, फिर माचिस ढूंढ चूल्हा जलाया···।

लता चुपचाप बैठी देखती रही, जरूर कुछ खास बात है। इस समय चूल्हा जलाने की क्या जरूरत थी···!

सुनीता भी खड़ी-खड़ी देख रही थी। अपराध-बोध सा म···

आगे आने से डर रही थी···। भाभी सो जाती तो वह खुद ही जाकर पूछ लेती···मगर उसके उठ जाने पर कहीं भाभी ही न पूछ लें···।

पुष्पा जरा-सी देर के लिए रसोई में रुकी, फिर गैस बन्द कर बत्ती बुझा बाहर आ गयी। लता ने देखा, उसके हाथ में झाड़न है और झाड़न पर एक कटोरी रखी है।

लता धीरे से वहाँ से खिसक आयी। फिर बैठक के दरवाजे में से झाँकती हुई देखने लगी···।

उमा भाभी बेजी की चारपाई पर एक ओर बैठी थी। पुष्पा भाभी स्टूल पर कटोरी रखते हुए कह रही थी—"आप लेटी रहिए बेजी···कुछ नहीं हुआ आपको। यह देखो हल्दी डाल घी गर्म कर लायी हूँ, आपके माथे पर लगा देती हूँ···चोट-वोट कुछ नहीं आयी। बस, सिर बर्फ की तरह ठण्डा हो रहा है।" फिर उसके सिर पर हाथ लगाती हुई बोली—"भला आपको भी क्या सूझी···बिलकुल कूलर के सामने चारपाई बिछा ली··· इस उमर में इतनी ठण्डी हवा के आगे भला क्या सोया जा सकता है?"

"यह तो अच्छा हुआ कि हमने देख लिया।" उमा ने रुकते-रुकते हुए कहा।

पुष्पा बात आगे बढ़ाती हुई बोली, "नींद में इंसान और भी भारी हो जाता है। भला हो इन लड़कियों का जिन्होंने आपकी चारपाई उठवाकर इस ओर लगवा दी, नहीं तो हम दोनों से तो उठाई ही नहीं जा रही थी।"

उमा ने उनके पाँव छूते हुए कहा—"पाँव भी बहुत ठण्डे हो रहे हैं··· न हो जुराबें पहना दें···?"

"नहीं···बहू···अब जुराबें क्या पहनाओगी···हाँ, हो सके तो जरा गर्म-गर्म घी की मालिश कर दो पाँवों पर, अपने आप गर्म हो जायेंगे···"

"मारे गये!" उमा दबी जबान में पुष्पा को देखते हुए फुसफुसा दी।

"शुक्र है बेजी ऊँचा सुनती हैं···" दरवाजे के पास खड़ी हुई सुनीता लता से बोल उठी—"उमा चाची लाख धीरे से बोलें, मगर आवाज उनके कानों तक पहुँची जरूर होगी। समझ न आयी हो तो बात दूसरी है···"

सिर-माथे पर हल्दी-घी उड़ेलकर पुष्पा ने बेजी का सिर एक कपड़े से

बाँध दिया फिर उन्हें आदेश देने के ढंग में बोली—"अब चुपचाप सो जाओ बेजी···आधी रात होने को आयी, अब हमें भी सोना है।" यह कहते हुए पुष्पा ने बत्ती बन्द कर दी।

साथ-साथ गद्दे बिछा दिये गये थे। इधर-उधर उमा-पुष्पा लेट गयी थी और बीचोबीच लता और सुनीता। कौन सो गया···कौन जग रहा है और किसकी नींद कोसों भाग चुकी है, किसी को कुछ मालूम नहीं था, लेकिन हाँ ··बेजी अँधेरे में आँखें खोले आसपास का जायजा लेती हुई सोचती जा रही थी कि यह सब हुआ कैसे? क्या सचमुच ही वह सपने में झूला झूलती हुई नीचे गिर पड़ी थीं या किसी ने उठाकर पटक दिया था?

उधर सुनीता खर्राटे लेने लगी तो लता ने उसकी ओर से मुँह फेर लिया। पुष्पा की पीठ लता की ओर थी। आधे से अधिक गद्दे का हिस्सा पुष्पा ने घेर रखा था। बीचोंबीच लता सिकुड़ी-सी लेटी थी। नींद उसे आ नहीं रही थी और दायें-बायें के रास्ते भी बन्द हो गये थे। वह उठकर न टहलने के लिए बाहर जा सकती थी और न ही अपने को ढीला छोड़ सकती थी। कूलर की आवाज से उसका सिर चकरा रहा था। इससे तो अच्छा था मैं बाहर ही भाभी के साथ चारपाई पर सो जाती। इस घर्र-घर्र करते हुए शोर से तो बच जाती। उसने करवट लेनी चाही तो सोचा, कहीं पुष्पा भाभी की पीठ से न टकरा जाये। यह सोच मन मारे साँस रोके वह सीधी सिकुड़ी-सी कुछ देर लेटी रही, फिर यह स्थिति भी जब सहन न हो सकी तो उठकर बैठ गयी। कमरे की खिड़की का पर्दा खींच दिया गया था, इससे बाहर के खम्बों पर लगी बत्ती की धीमी रोशनी टेढ़ी-सी लकीर बनाये कमरे में फैल रही थी। इसमें उसने देखा, बेजी अपनी चारपाई पर बैठी हुई हैं। उसका मन हुआ कि वह बेजी से जाकर पूछे—कहाँ दर्द तो नहीं हो रहा बेजी···लेकिन उठकर जाना और जाकर पूछना भी आसान नहीं था। वह कान लगा बेजी की आहट या कुछ दर्द होने की कराहट को सुनने का प्रयत्न करती रही। दर्द होगा तो बेजी अवश्य कराहेंगी। अगर यों ही नींद न आने के कारण ही बैठी हुई हैं, तो जरूर पाठ कर रही होंगी। एकाएक उसे बेजी पर स्नेह उमड़ आया,

लेट दिया

बुढ़ापे पर दया हो आयी। उसे लगा, बेजी के लिए हमें कठोर नही होना चाहिए। वह अगर हमे कुछ ऐसा कह भी देती हैं तो हमें इतना बुरा नही मानना चाहिए। उसे याद आया, माँ बताती थी—'कोई वक्त था जब बेजी ने अपने भाइयों के लिए अपने पिता से लड़ाई लड़ी थी। अपने भाइयों के लिए हक माँगने के लिए होड़ की थी, इसीलिए तुम्हारे पिता जी उनके एहसान को कभी भूले नही थे। इस घर मे जो कुछ भी होता रहा है उसमें बेजी की राय अवश्य ही ली गयी है। अब बुढापे में स्वभाव कुछ चिडचिड़ा हो गया है तो इसमें उनका क्या दोष! परिस्थितियाँ इन्सान को बदल कर रख देती हैं। अगर आज बेजी के पास अपना घर होता तो उन्हें अपने लड़कों के अधीन न रहना पड़ता। तुम्हारे फूफा जी ने भी इनके लिए कुछ न सोचा।' विचारों की शृंखला में एक कड़ी पुष्पा भाभी के स्वभाव में आकर जुड़ गयी। पुष्पा भाभी ऊपर से क्या है और भीतर से क्या? यह विचार आते ही उसे लगा, कुछ लोग ऊपर से मीठे होते हैं और भीतर से कड़वे। मगर पुष्पा भाभी ऊपर से जितनी अक्खड़ और दबंग हैं, भीतर से उतनी ही कोमल और ममतामयी। उसे याद आया, माँ कहा करती थी—'इन्सान के अवगुण नहीं गुणों को देखना चाहिए।' सम-भाव अपनाने वाली नीति ने माँ को कितना महान बना दिया था! कभी किसी वक्त उसने सुना था कि 'तुम्हारी सोहाग भाभी जब ब्याही थी तो बेजी ने उसे लड़की मानकर ब्याहा था, मगर दान-दहेज की जब बात हुई तो तुम्हारे पिता जी ने और मैंने साफ-साफ बेजी से कह दिया था कि इसकी चिन्ता आप मत करो, हम सोहाग को इसकी कमी न खटकने देंगे। दहेज भी हम बनायेंगे और बरी भी। इसी-लिए तुम्हारी दूसरी भाभियों से अधिक जेवर मैंने तुम्हारी बड़ी भाभी को पहनाये थे।' और लता ने एक लम्बी साँस ली। सिर उसका भारी हो रहा था और पीठ अकड़-सी गयी थी, इसलिए न चाहते हुए भी वह लेट गयी, पर नींद थी कि लाख प्रयत्न करने पर भी नही आयी।

समय जैसे ठहर-सा गया हो, लम्बी दोपहरियाँ धूप की चादर फैलाये जमकर बैठ गयी हों, ऐसे ही एक-एक पल उस घर मे घरवालों के

लिए घण्टे बनकर बीत रहा था। तीनों भाई इस [illegible] वातावरण में [illegible]
अपने को बेकार और अव्यवस्थित-सा अनुभव कर रहे थे। [illegible]
रहा था जैसे उनका एक-एक कीमती क्षण यों ही नष्ट हो रहा है।
प्रिन्सिपल होने का नया-नया दायित्व उनके कन्धों पर आ पड़ा था और
उसमें यह व्यवधान उन्हें बुरी तरह से अखर रहा था। उन्हें सोचते हुए
अपने आप पर गुस्सा आ जाता कि चौथे वाले दिन पगड़ी की रस्म क्यों
नही होने दी गयी? बेजी के कहने का पूरी तरह से विरोध क्यों नहीं
किया? तेरहों दिन तक इस तरह दरी बिछाये, अफसोस करने वालों की
बाट जोहना क्या शोभा देता है? इस बीच कहीं आ नहीं सकते, कहीं जा
नही सकते। ये रस्में, ये रीति-रिवाज और यह बिरादरी वालों का लिहाज
कितनी बड़ी मूर्खता की बात है! उधर नरेश-महेश अलग से परेशान थे।
महेश के जालन्धर में केस लगे थे। बीच में एक-आध बार जाकर लौट
आया था। और नरेश की दुकान के काम में भी नुकसान हो रहा था।
इतने दिन दुकान मुंशी और नौकरों के हवाले छोड़ रखी थी। पुष्पा बार-
बार कह उठती—'रोज की बिक्री का हिसाब कौन रखता होगा? खूब
मजे उड़ा रहे होंगे वे लोग!' वास्तव मे उसे इस चीज की चिन्ता अधिक
सताये जा रही थी कि बिक्री का जो ऊपर का पैसा उसके हाथ में आ
जाता था उससे वह वंचित हो रही थी और इस गुस्से में बच्चों की पढ़ाई
का हवाला देती हुई सुनीता से कह देती—'तुम्हारा क्या बिगड़ेगा! जो
कमी पढ़ाई में रह भी गयी, तो भाई साहेब पूरी करवा देंगे, मगर यहाँ
तो ये बच्चे बिल्कुल आवारा हो गये हैं।' बात पुष्पा की सही भी थी।
औरतों के जमघट में गप्पें लगाने मे बच्चों की देखभाल होती भी कैसे!
जब ही वह बच्चो को बिठलाकर किताबें आगे ला रखती, उसी समय
घर में कोई न कोई अफसोस करने को आ पहुँचता और पुष्पा सब कुछ
छोड़ उसके पास आ बैठती। परिचित चाहे जेठानी जी का होता या [illegible]
का कोई रिश्तेदार। उनसे पुष्पा का मिलना जरूरी हो जाता। [illegible]
फोन की घण्टी बज उठती तो पुष्पा चट से जा पहुँचती। [illegible]
फोन करने वाले का नाम और काम पूछना जरूरी हो जाता। [illegible]
सर की ताक में किताबें छोड़ बच्चे भाग निकलते। [illegible]

देखती, किताबें-कापियाँ बिखरी पड़ी हैं और बच्चे नदारद । फिर जब ही कोई सामने आ जाता तो रोना ले बैठती, बच्चे बिल्कुल आवारा हो गये हैं।

उधर सोहागवती का साहस टूटता जा रहा था। तेरहवीं का दिन जैसे-जैसे निकट आता जा रहा था, उसकी घबराहट बढ़ती जा रही थी। सगे-संबंधियों को भेजे गये शोकपत्र के जवाब आ चुके थे। दूसरे शहर से आने वालों को ठहराने का इन्तजाम, उनके खाने-पीने की व्यवस्था एक बहुत बड़ी समस्या-सी मालूम हो रही थी। इतना सब कैसे होगा, यह सोचते ही उसे घबराहट हो आती। करनाल से बेजी का लड़का और बहू आ चुके थे। उधर सुबह की गाड़ी से अमृतसर से पुष्पा के माँ-बाप भी आने वाले हैं। परसों क्रिया का दिन है। बीच में केवल एक दिन रह गया है। उधर लुधियाना से माँ जी की मौसेरी बहन और चाचा का लड़का भी आ रहे हैं। बेजी कह रही थी—"पगड़ी के लिए कृष्ण को कह दिया है, सोमेश के लिए वही ले आयेगा। क्या करूँ, भतीजे के सिर पर बांधने के लिए पगड़ी बुआ के घर से आयेगी। इधर-उधर से कोई भी तो नहीं है।"

यह सुनकर सोहागवती को बहुत बुरा लगा था। अपने को एकदम सेऽअकेली और निरीह-सी महसूस करने लगी थी। मायके की ओर से कोई भी तो नहीं था। ले-देकर यही एक ताई जी ही थी। जो ताई क्या फूफी सास का आभास अधिक दिलवा रही थीं। बेजी ने उसी के सामने ही अपने बेटे कृष्ण से कह दिया था—"पगड़ी के साथ कुछ रुपये भी रखना, खाली पगड़ी नहीं होती।"

तब सोहाग ने कहा था—"नहीं बेजी, रुपये आदि नहीं देने, इन्होंने सबको मना कर रखा है। पगड़ी के साथ रुपयों की कोई जरूरत नहीं।"

"लो और सुनो, कुछ अक्ल की बात करो सोहाग, मालूम होता है तुम लोग सब रीति-रिवाज भूल चके हो।"

आखिरी शब्द जोर देकर कहे गये थे जिन्हें सुन सोमेश और नरेश कमरे से बाहर निकल गये और पूछने लगे—"बात क्या है बेजी··· ?"

"कुछ नहीं···" सोहागवती ने टालने की कोशिश की, मगर बेजी से चुप नहीं रहा गया। बोली—"देखो सोमेश···आगे-पीछे जो करो सो मैं देखने नहीं आऊँगी। मगर अब इस समय जो रीति-रिवाज होते हैं उनके बारे मे सलाह देना जरूरी है। बिरादरी इकट्ठी होगी और बिरादरी के सामने इज्जत रखनी जरूरी है।"

"मतलब क्या है···साफ-साफ कहिए न···" सोमेश ने अधीरतावश कहा।

"बात मतलब की नहीं, कायदे की है। देखो क्रिया-कर्म के समय जो कुछ होता आया है हमारे यहाँ, वही अब भी होगा!"

"यानी कि पगड़ी की रस्म?"

"हाँ···और उसके साथ···"

बेजी की बात अधूरी छोड़ सोमेश ने अपना फैसला सुना दिया—"देखो बेजी···पगड़ी की रस्म तो होगी ही। मगर बाकी का लेन-देन नहीं होगा। मैंने नरेश-महेश से भी कह दिया है कि पुष्पा और उमा अपने माँ-बाप को समझा दें कि पगड़ी के अलावा और कुछ नहीं लायें।"

"कुछ न लायें···यह कैसे हो सकता है? पुष्पा के माँ-बाप स्याम अमृतसरिये हैं और तुम्हारी माँ और पिताजी भी अमृतसर के थे। वहीं जन्मे-वहीं पले भी। दिल्ली में रहने लगे हो तो इसका मतलब यह तो नहीं कि अपने खानदानी रीति-रिवाज ही भूल जाओ। पुष्पा के माँ-बाप जो आ रहे हैं, क्या वह खाली पगड़ी बाँधने के लिए आ रहे हैं?"

सोमेश कुछ कहने को हुआ कि नरेश बड़े भाई की बाँह थामे भीतर ले गया और कहता गया—"बहस छोड़ो, भइया···जो होगा देखा जायेगा···"

बेजी बुदबुदाती रही—"देखा क्या जायेगा, जो होता है वह तो होगा ही। उस दिन का खाना-पीना सब उन्हीं की तरफ से होगा। पूरी बिरादरी का खाना, पुष्पा और उमा के मायके वालों की ओर से ही खिलाया जायेगा। चाहे बिरादरी के लोग पचास हों या दो सौ—यह खाना भी उनकी तरफ से ही किया जायेगा। घर मे जो भी उस दिन आयेगा, खाना-पीये बगैर नहीं जायेगा।" बेजी बोलती चली गयी, और ···

इधर-उधर हो गये।

लता फोन पर बात कर रही थी—खूब लम्बी बात, मगर इस कदर धीरे से कि लाख यत्न करने पर भी पुष्पा के कान सुन नहीं सके। रिसीवर नीचे रखते न देख पुष्पा को आखिर वहाँ से हट जाना पड़ा। नरेश आवाजें लगा रहा था। हाथ मे उसके एक लम्बा-सा कागज था जिसे पुष्पा को सुनाना जरूरी था। पुष्पा आयी तो बोली—"क्या बात है, आवाजें क्यों लगा रहे हो ?"

"देखो पुष्पा···भाभी की तबीयत कुछ अच्छी नही है, और उमा भी शायद ऊपर चली गयी है। यह लिस्ट है उन चीजो की जो पंडित जी लिखवाकर गये हैं। यह कल मँगवा लेनी चाहिए। परसों सुबह-सवेरे पडित जी हवन करने आयेंगे और उसके साथ ही मन्दिर में यह सब दान के लिए दिया जायेगा।"

"दान आदि तो हरिद्वार में दे आये थे, अब और क्या पण्डित माँगेंगे ?"

"मुझे नही मालूम !"

"तो फिर लिस्ट क्यों ले आये हैं मेरे पास···भाभी साथ गयी थीं आपके, उन्हें मालूम होगा कि क्या कुछ कसर रह गयी है। लाओ लिस्ट दिखाओ, सुबह भाभी उठेंगी तो पूछ लूंगी।" बुदबुदाती हुई पुष्पा ने लिस्ट ले ली। बेजी का कहा-सुना सब उसे मालूम था और वह यह भी जान चुकी थी कि तीनों भाई जो चाहें कह लें, मगर होगा वही जो बेजी कहलवायेंगी।

नरेश पुष्पा की त्यौरियाँ देख वहाँ से चुपके से खिसक गया था। पुष्पा लिस्ट हाथ में लिये चारपायी पर बैठ गयी थी और मन ही मन अनुमान लगा रही थी कि क्रिया वाले दिन मम्मी-पापा के जिम्मे क्या-क्या खर्च पड़ेगा। उमा के पापा तो आने से रहे···जो कुछ करना है मम्मी-पापा को ही तो करना पड़ेगा।

एकाएक कलाई पर बँधी घड़ी की ओर देखा तो चौंक पड़ी, ग्यारह बज रहे हैं···बहस और खींचातानी में इतना वक्त निकल गया। महेश से पूछा भी नही कि सुबह कोई स्टेशन पर जायेगा या मम्मी-पापा टैक्सी

लेकर ही आयेंगे। चारपाई से उठते हुए उसने बैठक की ओर झाँककर देखा तो पाया··· बत्ती बुझा दी गयी है और कूलर की ठण्डी हवा लेते हुए तीनों भाई बिस्तरों पर लेट चुके हैं। मन मसोसती-सी पुष्पा बिस्तर पर लेट गयी। ध्यान उसका सभी ओर से उचटकर लता की ओर जा पहुँचा।

किसका फोन होगा? इतनी धीरे-धीरे बातें क्यों कर रही थी? इतना लम्बा फोन? और उसने याद किया···सुबह कोई मिलने आया था उससे! हमने पूछा भी तो आनाकानी करने लगी थी। सुनीता ने ही आकर कहा था उससे—'दीदी, आप जरा बाहर तो जाओ।' इसका मतलब है सुनीता जानती होगी, ऐसी कुछ बात होगी ही। नहीं तो सुनीता यह क्यों कहती कि बाहर जाओ? आने वाले को भीतर क्यों नहीं बुलाया गया? कहीं कोई ऐसी-वैसी बात तो नहीं है? कुछ सोचती-सी वह एकाएक सजग-सी हो उठी—'है···तो क्या बुरा है? यों अभी तक शादी हो नहीं सकी। दो बार रिश्ता पक्का किया, मगर न जाने क्यों टूट गया···। एक बार महेश के मुंह से निकला था, लता ने यह रिश्ता नहीं होने दिया। लड़का अच्छा-भला था, पर लता ने सहेली से कह दिया था कि मैं अभी शादी नहीं करना चाहती। तो क्या बेजी का कहना गलत था कि लड़के वालों ने कह दिया है, लड़की लँगड़ा कर चलती है? पुष्पा ने गहराई की तह तक जाने की चेष्टा की तो पाया, कहीं कोई सूत्र नहीं जो पकड़ा जा सकता हो। कहीं ऐसा कोई निशान भी नहीं जिसके प्रमाण को लेकर माथा-पच्ची की जाये। इसलिए उसने सोने के उपक्रम में अपना ध्यान गायत्री-मन्त्र के पढ़ने में केन्द्रित किया···। कोई विचार उसके ध्यान में बाधा न डाले इसलिए मन ही मन जाप न करते हुए धीमी आवाज में मन्त्रोच्चारण करने लगी, पर नींद फिर भी नहीं आयी। जाने क्या था जो रह-रह कर उसे उद्वेलित कर रहा था। एक ऐसी उथल-पुथल हो रही थी जो उसकी समझ से बाहर थी। उसका मन हुआ कि वह जाकर नरेश को झँझोड़ कर उठा दे और पूछे कि तुम इस कदर मेरी ओर से विमुख क्यों हो? जब से यहाँ आये हो कभी भूले से भी पास नहीं बैठे। कभी पलट कर भी नहीं देखा कि मैं क्या करती हूँ, क्या देखती हूँ, क्या

महसूस करती हूँ ? अमृतसर मे चले थे तो बस ऐसे जैसे माँ जी के जाने का दुःख सिर्फ उन्ही को ही हुआ है । मैंने क्या करना है ? कैसे जाना है ? इन सबके लिए न पूछने की जरूरत थी, न साथ ले जाने की जिम्मेदारी ! अब जबकि भाभी सो गयी हैं और उमा ऊपर चली गयी है, तभी लिस्ट मेरे हाथ मे देकर चलते बने हैं । मुझसे अच्छी तो यह बेजी ही हैं, जिनके साथ बैठकर बातें करते और सलाह-मश्विरा करते है । दीदी को जेठ-जी ने समझाया और महेश ने उमा को बताया कि लेन-देन नहीं होना चाहिए । खाली पगड़ी की रस्म ही होगी···। परस्पर जो भाइयों ने फैसला किया है उसकी भनक भी मुझ तक नही पहुँची···। सुनी तो सिर्फ यही बात सुनी जो बेजी मुझे सुनाने के इरादे से इनके जाने पर कहे जा रही थी—'पुष्पा के माँ-बाप की ओर से पूरी बिरादरी को खाना खिलाया जायेगा ।' हूँ···पुष्पा का जी चाहा कि बेजी को सोते से जगा दे और पूछे कि आप कौन होती हैं यह सब समझाने वाली ? जीते जी तो कभी भाभी को आकर पूछा तक नही था, अब चली गयी है तो शोक मनाने की आड़ ले प्रीतिभोज करवा रही है ! बड़े ठाठ से कह रही हैं—'जो इस घर में आयेगा, खाये बगैर नही जायेगा···' हूँ···खाये बगैर नही जायेगा ! बड़ी आयी है दिल वाली ! अपने पल्ले से खर्च करना पड़ता तो पता चल जाता···ठीक है, मैं भी कोई ऐसी-वैसी नही हूँ···मम्मी-पापा के आते ही सब समझा दूँगी और कहूँगी कि बेजी की बातों मे मत आइए, जो कुछ कहना है बड़े भइया से पूछिए और बड़ी भाभी से कहिए···बेजी को बीच में लाने की कोई जरूरत नही । यह सोचते ही सोचते उसकी आँखें झपक गयी ।

सुबह सवेरे ही जोर से ब्रेक लगी और चरमराती हुई एक टैक्सी गेट के पास आकर रुक गयी । बरामदे मे बिछी चारपाई पर बैठी आँखें मूँदे बेजी माला के मनके फेर रही थी । घरघराहट की आवाज सुनते ही माला का मनका उँगलियों के पोर में अटक गया और आँखें खोलकर जो देखा उसे देखते ही मन-ही-मन चहक उठी । "टैक्सी के कैरियर पर बड़े-बड़े दो सूटकेस बँधे थे और टैक्सी ड्राइवर डिक्की खोले भीतर से सामान

निकाल रहा था। बड़ा-सा टोकरा, दो-दो भरे-भरे थैले। उधर पुष्पा के पापा सीट पर से छोटे-बड़े पैकेट निकाल रहे थे।

बेजी जोर-जोर से आवाजें देने लगीं—"अरे ओ महेश···नरेश·· अरे बाहर तो आओ! कम्बख्त यह कूलर भी कैसा शोर मचाये जा रहा है! आवाज ही नहीं सुनाई देती।" एकाएक बेजी कुछ याद करने के ढंग से, सिर पर का आँचल माथे पर खींचती हुई पुष्पा की माँ के पास आकर खड़ी हो गयीं। पल-भर की चहक धूमिल हो गयी थी, अब चेहरा संजीदा और आवाज भर्राई-सी थी। पुष्पा की माँ ने गले मिलते हुए आँखें नम करने की कोशिश में आवाज को आर्द्र बनाते हुए कहा—"बड़ा दुःख हुआ है बेजी···इस उमर में आपको यही देखना था!"

बेजी ने लम्बी साँस भरते हुए कहा—"भगवान को यही मंजूर था, नहीं तो अभी उमर ही क्या थी···कुआरी लड़की है···हाथ भी पीले नहीं कर सकी···" बेजी गले से लगाये कुछ और देर खड़ी रहतीं, मगर बच्चों ने आकर बेजी को एक ओर कर दिया और नानी से चिपकते हुए बोल उठे—"नानी माँ···नानी माँ···आइए न···अन्दर आइए···!"

नरेश, महेश और सोमेश कब पुष्पा के पापा को लेकर अन्दर चले गये थे, बेजी देख नहीं सकीं। पीछे देखती हुई पूछ उठीं—"बालकृष्ण कहाँ है···"

"बेजी, नाना जी अन्दर चले गये हैं···नानी···आप भी चलिए न···"

सभी लोग बैठक में आ पहुँचे थे। पुष्पा की माँ धनवन्ती इधर-उधर कुछ ढूँढ़ती-सी देख रही थीं। नरेश ने देखा तो सुरेश से बोला—"सुरेश, मम्मी कहाँ हैं तुम्हारी? जाओ उन्हें बुला लाओ।"

मंजू चट से बोली—"मम्मी सो रही हैं डैडी!"

बेजी तुनककर बोली—"अभी तक सो रही है! दिन चढ़ आया है और इन लोगों की नींद ही नहीं खुलती···जाओ मंजू, मम्मी को भी उठा लाओ और उमा चाची से भी कहो नीचे उतर आयें।"

"रहने दो बहन जी···अभी आ जायेंगी, ऐसी जल्दी भी क्या है···" पुष्पा की मम्मी ने कहा।

तभी सोहागवती ने भी कहा, "पुष्पा रात देर से सोई थी बेजी, इसीलिए आज उठने में कुछ देरी हो गयी है। नहीं तो वह तो बहुत जल्दी उठ जाती है। यह कहने के साथ ही उसने पुष्पा की माँ को कहा—"आप भी खूब थकी हुई लग रही हैं, रात का सफर करके आयी हैं, चलिए हाथ-मुँह धो लीजिए। मैं चाय बना लाती हूँ।" और फिर नरेश से कहा—"नरेश, पापा जी को भी कहो हाथ-मुँह धो लें। मैं आप लोगों के लिए चाय बैठक में ही भिजवा देती हूँ…।"

बरामदे मे रखा सामान देख सोहागवती अचकचा गयी। बड़े-बड़े दो सूटकेस…छोटे-छोटे कई पार्सल और बड़ा-सा फल का टोकरा।

तभी सोमेश भी वहीं आ पहुँचे। सोहाग उन्हें देखते ही रसोई की ओर चल पड़ी। पीछे-पीछे सोमेश ने आते हुए धीरे से परन्तु तलखी से कहा—"यह फल क्यों ले आये हैं…ऐसे मौकों पर फल लाना अच्छा लगता है क्या ?"

सोहागवती खुद भी हैरान थी, परन्तु पति के आवेश को देख सहम-सी गयी—फिर दबी जबान में आजिजी-भरे स्वर में बोली—"अब मेहरबानी करके कुछ कहिएगा नहीं, मैं हाथ जोड़ती हूँ…"

"मगर इतना तो सोचना था कि…" आगे वह कुछ कह नहीं सका… देखा, पुष्पा और उसकी माँ कमरे से वाहर आ रही थी। वह गुस्से से बैठक की ओर चल दिया।

बरामदे मे रखे सामान की ओर देख पुष्पा ने सोहागवती से पूछा—"दीदी, यह सामान कहाँ रखवाना है ?"

"अभी तुम अपने कमरे में ही रखवा दो, बाद में मैं अपने वाला कमरा खाली करवा दूँगी।"

पुष्पा की माँ एकदम से बोल उठी—"अपना कमरा क्यों खाली करवाती हो सोहाग, पुष्पा के कमरे मे ही रखा रहेगा, काफी जगह है वहाँ…"

पुष्पा सूटकेस उठाने लगी तो एकाएक पूछ बैठी—"मम्मी…क्या-क्या भर लाई हो…इतने भारी सूटकेस…" फिर टोकरा देख वह भी चकित सी बोली—"यह क्या है मम्मी…यह सब क्यों लाई हो ?"

"देख पुष्पा···उस दिन संस्कार वाले दिन हम यहाँ नही थे। ब्राह्मणों को फल आदि हमारी ओर से ही दिया जाना था···अब कल पूजा होगी···तो यह फल उनको देने होगे।"

"कल के लिए फल यहां से भी तो आ सकते थे। वहाँ इतनी दूर से लाने की क्या जरूरत थी?"

"वहां से कहाँ लाई हूँ, यही स्टेशन पर से आते हुए रास्ते मे ही खरीदे है, सोचा कल फिर जाना पडेगा सो अभी से ही ले लें···"

बेजी भी आ पहुँची थी···लोलुप-सी निगाहों से देखती हुई बोल उठी—"तुम ठीक ही कहती हो धनवन्ती···इन लोगो को क्या मालूम कि कल पूजा के वक्त क्या-क्या दान-पुण्य होना है और क्या कुछ करना है!"

पुष्पा झल्लाती हुई बोली—"आपने सब लिखवा तो दिया है, इतनी लम्बी लिस्ट मेरे पास रखी है जो कल रात आपने इनसे लिखवाई थी···" कहते-कहते पुष्पा भारी-भरकम सूटकेस घसीटती कमरे में ले गयी।

फिर लौटकर आयी तो सोहाग के हाथ से चाय की ट्रे पकड़ती हुई कहने लगी—"दीदी, आप भी वही आ जाइए—हम सब इकट्ठे चाय भी पियेंगे और कुछ जरूरी बातें भी करेंगे।" और जाने के उपक्रम में पीछे मुड़कर देखती हुई कहती गयी—"बेजी का तो अभी जप-पाठ ही खत्म नही हुआ, उन्हें जो पीना होगा, वह बाद में दे देंगे···"

बेजी बुरी तरह से तिलमिला उठीं, उसी तिलमिलाहट में बुदबुदाती रहीं—"कल तक तो ठीक थी, आज माँ-बाप को देखते ही बिफर उठी है··· न पाँव छुए···न राम-राम की। कहती है···जप-पाठ करो जाकर···।"

पुष्पा ने कमरे में जाकर फिर से आवाज लगाई—"दीदी, आओ भी, अब वहाँ खड़ी क्या कर रही हो···चाय ठण्डी हो रही है!"

बेजी ने गुस्सा सोहागवती पर निकालते हुए कहा—"तुम खड़ी क्या देख रही हो मुझे, जाओ जाकर चाय पियो उनके साथ···। जब वहाँ से फुर्सत मिल जायेगी तो मेरे लिए चाय-पानी का इन्तजाम करवा देना।" बेजी अपमानित होती हुई वहाँ से चल दी।

सोहाग कुछ क्षण हतप्रभ-सी वहाँ खड़ी रही फिर पुष्पा के पास जा पहुँची। तभी सुनीता ने आकर कहा—"उमा चाची की तबीयत कुछ ठीक नहीं है मम्मी !"

"क्यों क्या हुआ ?" सभी एकबारगी चौंक उठे।

सोहाग ने प्याला रखते हुए कहा—"पुष्पा, तुम मम्मी के पास बैठो, मैं ऊपर जाकर देखती हूँ···।"

ऊपर महेश था, उमा लेटी हुई थी···उमा का चेहरा निस्तेज और शरीर निढाल-सा हो रहा था।

"क्यों क्या हुआ उमा, तबीयत एकाएक कैसे बिगड़ गयी ?"

"कुछ नहीं भाभी···रात को खाना देर से खाया था···इसीलिए हजम नहीं हुआ···जी खराब-सा है···उठने लगती हूँ तो चक्कर-से आने लगते हैं···"

सोहाग ने लता को बुलाते हुए कहा—"लता, नीचे जाओ और गर्म तवे पर निम्बू गर्म करके उसमें चीनी डालकर ले आओ···फिर जब उससे तबीयत जरा सँभल जायेगी तो निम्बू की चाय बना देंगे···उससे जरूर फायदा होगा।"

सोहाग ने उसके माथे पर हाथ फेरते हुए कहा—"घबराओ नहीं उमा···अभी ठीक हो जाओगी। इन दिनों वक्त-बेवक्त खाना-पीना होता रहा है न, इसीलिए तबीयत बिगड़ गयी है। आज पूरा आराम करना, नीचे आने की भी जरूरत नहीं है। मैं पुष्पा की मम्मी से कह दूँगी·· वह यहीं आकर मिल लेंगी।"

"नहीं दीदी, नहीं !" उमा उठने के उपक्रम में बोली—"आप जाइये दीदी···नहीं तो वह सब ऊपर ही आ जायेंगे। मेरी तबीयत जब ठीक हुई तो मैं ही नीचे आ जाऊँगी···ताई जी को ऊपर मत भेजना···" उमा ने जोर देकर सोहाग को नीचे भेज दिया।

सोहाग ने आते हुए कहा—"महेश, तुम यहीं रहना।"

"मैं यहीं हूँ भाभी···आप फिक्र न करो···और उन लोगों से भी कुछ न कहें। थोड़ी देर तक उमा खुद ही नीचे आ जायेगी।"

"अच्छा ठीक है···मैं उन्हें ऊपर नहीं आने दूँगी। लेकिन तुम भी

नीचे मत आना उमा···!"

सोहागवती नीचे आयी तो पुष्पा और उसकी मम्मी ने उत्सुकता से पूछा—"क्या हुआ है उमा को···? ठीक तो है न···?"

"हाँ···हाँ···बिलकुल ठीक है। जरा सिर में दर्द था, कह रही थी रात को नींद नहीं आयी, इसलिए तबीयत भारी-सी है···। सो मैं उससे कह आयी हूँ कि आराम से लेटी रहो···फिर नहा-धोकर ही नीचे आ जाना ···। क्यों ठीक है न पुष्पा···?"

"हाँ···हाँ···ठीक है, लो अब चाय पियो दीदी ! वह तो ठण्डी हो गयी थी, यह प्याला ताजा बनाया है।"

"सोहागवती ने चाय पीते हुए कहा—"अब बताओ, वह कौन-सी जरूरी बातें है ?"

"जरूरी बातें तो कोई नहीं थी दीदी, बस यों ही बेजी को ही सुनाना था। हर बात में टाँग अड़ाने लगी हैं, दीदी ! इसी तरह से करती रही तो हम लोगों की कोई सुनवाई ही नहीं रहेगी। आप बड़ी है, मगर उनको रोक नहीं सकती। लेकिन हमसे तो यह सब सुना नहीं जायेगा···।"

सोहाग ने जवाब नहीं दिया। पुष्पा की माँ के आगे वह किसी बात की बहस मे पड़ना नहीं चाहती थी। और पुष्पा को समझाना भी बेकार था। सो जवाब से एक चुप ही भली। यह सोच वह चाय की खाली ट्रे लिए रसोई की ओर चल दी।

पुष्पा की मम्मी सूटकेस खोल नहाने के लिए कपड़े निकालने लगी तो पुष्पा से बोली—"पुष्पा · तुम्हारे चाचा आये थे यहाँ···?"

'हाँ, मम्मी, आये तो थे, मगर थोड़ी देर ही रुके थे।"

"कल आयेंगे क्या ?"

"मालूम नहीं मुझे।"

"उमा ने कुछ नहीं बताया ?"

"नहीं तो···क्यों क्या बात है ?"

धनवन्ती ने इशारे से उसे पास बुलाते हुए पूछा—"कल पगड़ी की रस्म है यह तो जानती हो न···और यह भी मालूम होगा कि यह सब लड़की के मायके वाले ही दिया करते हैं ?"

"हां"' तो फिर ?"

"फिर क्या, यही तो पूछ रही हूँ कि महेश के लिए पगड़ी उमा के पापा देंगे कि हमें मँगवानी होगी ?"

"मुझे तो कुछ मालूम नही मम्मी और हाँ उमा को भी शायद पता नही—क्योंकि जब चाचाजी चले गये थे तो उमा के हाथ में कुछ नहीं था।"

"तो इसका मतलब है, यह सब हमें ही करना पड़ेगा। मैं तो नरेश के लिए पगड़ी लाई हूँ और तुम्हारे लिए साड़ी···और महेश के लिए सूट का कपडा भी और इन बच्चों के लिए कपड़े-लत्ते तो लायी ही हूँ।"

"यह सब···क्यों···? सबके कपड़े लाने की क्या जरूरत थी मम्मी ···वैसे भी बड़े भइया···इस तरह के रीति-रिवाज नही करना चाहते। वह तो कह रहे थे कि खाली पगड़ी ही बाँधी जायेगी, बाकी रुपये आदि नही लेने। उन्हें मालूम होगा तो बुरा मानेंगे।"

"बुरा क्यों मानेंगे? उनके अपने ससुराल वाले तो हैं नही इसलिए क्या हम भी बिरादरी के आगे चुप लगाये बैठे रहेंगे ?"

"यह सब वहाँ अमृतसर की बातें हैं मम्मी, यहाँ यह सब नही चलता।"

"शहर अमृतसर हो या दिल्ली। लोग और बिरादरी तो सब वही है। जानती नहीं कि नरेश के पिता जी के स्वर्गवास पर क्या कुछ किया था!"

"तब की बात और थी, अब जमाना बदल गया है। मैं तो कहती हूँ ···आप यह सब रहने ही दो, बेकार में बात बन जायेगी।"

"अब तुम जो चाहो कह लो, मैं तो यह सब ले ही आयी हूँ और यह सब वापस तो ले नही जाऊँगी।"

पुष्पा ने देखा, पूरा सूटकेस उन्ही के कपड़ों से भरा हुआ है। बच्चों के कपड़े, महेश का गर्म सूट, साड़ी ··पगड़ी। पगड़ी के ऊपर रुपयों से भरा लिफाफा।

"मम्मी···प्लीज, यह सब अभी मत खोलो···ऐसे ही रहने दो···मैं नरेश से बात कर लूंगी···अभी किसी से कहो भी नही···"

पुष्पा सूटकेस बन्द करना चाह रही थी कि तभी मंजू और सुरेश माँ को पीछे धकेलते हुए सूटकेस के पास आ पहुँचे और चिल्लाते हुए बोले—"नानी जी···हमारे कपड़े कहाँ हैं ? हम आज वही पहनेंगे··"

पुष्पा ने मंजू का हाथ खींचते हुए एक थप्पड़ लगाते हुए कहा—"चुप हो जाओ · खबरदार जो इधर आये तो···चलो सुरेश, भागो यहाँ से, वरना तुम्हें भी चाँटा पड़ेगा।"

मंजू जोर-जोर से चिल्लाती हुई बोली—"हमारे कपड़े दो, हम यही पहनेंगे, नानीजी हमारे लिए लाई हैं।"

"चुप होते हो कि नहीं ?" पुष्पा ने एक थप्पड और लगाया तो मजू ने आसमान सिर पर उठा लिया।

पुष्पा की माँ मजू को अपने पास सटाती हुई लडकी से बोली—"कैसी हत्यारिन हो ! देखो तो सही, गालों पर पाँचो उँगलियों के निशान लगा दिए हैं।" माँ को डाँट पडती देख मंजू और जोर-जोर से रोने लगी, तब पुष्पा की माँ ने पुचकारते हुए कहा—"चुप हो जा मजू, सब सुनेंगे तो क्या कहेंगे !"

बेटी की चिल्लाहट सुन नरेश भी उठकर आ गया और आते ही बोला—"क्या सुबह-सवेरे रोना ले बैठी हो ! क्या बात है पुष्पा, इसे चुप क्यों नहीं कराती !"

"यह क्या चुप करायेगी ! मार-मारकर लाल कर दिया है···" पुष्पा की माँ मजू को पुचकारती जा रही थी और मंजू उनकी शह पाकर और जोर-जोर से रो रही थी···अब पुष्पा को ताव आ गया। वह अपनी माँ के पास से मजू को खींचती हुई बोली—"तुम प्यार कर रही हो न, इसी-लिए और जोर से चिल्लाने लगी है।"

"तो क्या मार ही डालोगी !" धनवन्ती को भी गुस्सा आ गया था और वह अपमानित-सी महसूस करती हुई एक ओर मुँह लटकाये बैठ गयी थी। बच्चों का शोर सुनकर पुष्पा के पापा भी वहीं आ पहुँचे और आते हुए बोले—"क्या बात है मजू बेटी ··रो क्यों रही हो ?"

मजू ने नाना के पास आते हुए रोते-रोते कहा—"मम्मी हमें नये कपड़े नहीं पहनने देतीं।"

"नये कपड़े···कौन-से नये कपड़े ?" नरेश ने गुस्से और आश्चर्य से पूछा।

पुष्पा चट से बोली—"मेहरबानी करके आप जाइए यहाँ से··· जितने पूछने वाले होंगे उतना ही यह शोर मचाती रहेगी।" बात का रुख बदलने के आशय से पुष्पा मंजू को प्यार से बुलाती हुई बोली—"चल आ मेरे पास, जो कहना है मुझसे कहो···घर-भर को क्यों इकट्ठा कर रही हो।" पुष्पा अपने पापा के पास से मंजू को ले जाती हुई कमरे से बाहर चली गयी। पुष्पा की माँ ने सूटकेस पलंग के नीचे सरका दिया और तौलिया-साबुन ले बाथरूम की ओर चल दीं।

रात खूब गर्म थी। नीचे तपते हुए फर्श पर ढेरों पानी छिड़का गया था, मगर फिर भी ठण्डक की जगह गर्म भाप के गुब्बारे उठ रहे थे ऊपर से गर्म लू ? किराये पर लिए गये कूलर भी बेदम-से हो गये थे। नलके से लगी हुई पाइप में से पानी रिस-रिसकर आ रहा था। पानी का दबाव वैसे भी कम था, ऊपर से इतने लोगों का जमघट। सुबह से आने वालों का नहाना-धोना चलता रहा। पीने के लिए फ्रिज की बोतलें तो क्या, मटके भी खाली हो चुके थे। टब में बर्फ डालकर पानी ठण्डा किया गया था फिर भी पीने वालों की प्यास बुझ नहीं रही थी।

सहन में लगा कूलर हवा फेंकने की अपेक्षा घर्र-घर्र का शोर ही अधिक कर रहा था।

पुष्पा और उसकी माँ की चारपाइयाँ साथ-साथ लगी थीं। सोहागवती और सुनीता एक ही चारपाई पर थीं। उधर बेजी, उनकी बहूरानी एक-दूसरे के पायताने की ओर सिर रखे सो रही थीं। आस-पड़ोस से जितनी चारपाइयाँ मिल सकती थीं, वे सोहाग ने जुटा ली थीं, लेकिन फिर भी सबका अलग-अलग सोना नहीं हो सका था।

पुष्पा की माँ खूब सफेद दूधिया चद्दर डाले दायें-बायें करवट ले रही थीं। गर्मी के मारे शलवार-कमीज नहीं पहन सकी थीं सो पेटीकोट के ऊपर ढीला-सा कुरता पहने लेट गयी थीं। मगर मोटा थुलथुला शरीर जैसे ही हिलता-डुलता, चद्दर एक किनारे हो जाती और पेटीकोट

पिण्डलियों से ऊपर तक सरक जाता।

महेश भइया के ऊपर सोने के कारण लता भी नीचे आ गयी थी। गर्मी के मारे उसका भी बुरा हाल था। कभी उठकर पानी पीती और कभी हाथ की पंखी उठा हवा करने लग जाती। उसकी चारपाई सबसे अलग एक कोने में बिछी थी, जहाँ न कूलर की हवा थी और न बाहरी हवा का झोंका। पुष्पा की माँ को हिलते-डुलते हुए वह देख रही थी। चाँद की धीमी मद्धिम और उदास रोशनी में वह हिलती हुई काया एक अजीब तरह की परछाईं बनी उसे भयभीत कर रही थी। उधर सहन की दीवार के साथ लगी नीम के पेड़ की टहनियाँ जैसे ही लू के थपेड़ों की मार से हिलने लगती, तो उनकी लम्बी-लम्बी परछाइयाँ उस सहन में सोने वालों के ऊपर आ-आकर मँडरा जाती। तब लता को सहन घर का नहीं एक ऐसा श्मशान घाट-सा जान पड़ता, जहाँ मुर्दे नहीं जिन्दा लाशें चारपाइयों पर लाकर बिछा दी गयी हों। इधर बेजी का दंत-विहीन मुँह खुला हुआ था। सिर के इक्के-दुक्के सफेद बाल आड़ी-तिरछी रेखाएँ बने उस झुर्रीदार चेहरे पर अपने उजड़ेपन की कहानियाँ सुना रहे थे। पिचके हुए गालों की ऊपर उठी हड्डियाँ और माथे से उंगल-भर नीचे धँसी हुई आँखें, उस खोपड़ी का आभास करा रही थी जिसे कोई कब्रिस्तान से उठाकर ले आया हो। लता उस दृश्य से पीछा छुड़ाने की भरसक चेष्टा कर रही थी। वह कभी अपनी आँखें भींच लेती और कभी मुँह पर दुपट्टा डाल अपने-आपको छिपाने की कोशिश करती, लेकिन बन्द आँखों के आगे भी वह चेहरा कभी खोपड़ी बना सामने आ खड़ा होता और कभी वह आकृति माँ के चेहरे के रूप में आकर बदल जाती। उसे एकाएक कँपकँपी-सी महसूस हुई। भय और घबराहट से वह विचलित हो उठी। उसका जी चाहा कि वह भागकर भाभी के साथ जा चिपके और कहे, भाभी मुझे अकेला मत छोड़ो'''मुझे डर लग रहा है। भय और आकुलता मे कब आँखें बोझिल हो गईं और कब वह नींद के आगोश मे खो गई, उसे कुछ मालूम नहीं हुआ। सुबह पौ फटते ही आँगन में बिछी चारपाइयों के उठाने का सिलसिला शुरू हो गया था, सभी अपने-अपने बिस्तर लपेटते हुए उठते जा रहे थे। ठीक आठ बजे पंडितजी आयेंगे, उनके आने से पहले आँगन की धुलाई

होनी है, फिर दरियाँ बिछाई जायेंगी। यह कार्यक्रम रात को सोने से पहले ही तय हो चुका था। सोहागवती ने पहले सुनीता को उठाया, फिर पुष्पा और उसकी माँ उठीं और बेजी तथा उनकी बहू पहले से ही जाग चुकी थीं। बेजी ने रात को ही अपनी बहू से कह दिया था कि सोमेश से पूजा करवाने के वक्त तुम्हारा और कृष्ण का होना आवश्यक है। सोहागवती इस समय उनकी मामी नहीं बहन ही समझी जायेगी और सोमेश जीजाजी।

पूजा-पाठ कुछ खाये-पीये बगैर ही होना है इसकी हिदायत भी बेजी दे चुकी थीं। उधर इन सबकी हलचल से अनभिज्ञ लता अभी भी चारपाई पर पड़ी सो रही थी। यह देखते ही बेजी ने सोहागवती से पूछा—"यह लड़की अभी तक सो रही है, इसे मालूम नहीं कि आज पूजा होनी है ?"

"अभी उठाये देती हूँ बेजी, अभी तो छः भी नहीं बजे।"

"छः नहीं बजे तो क्या हुआ ! घड़ी देखकर उठना होता है क्या ?"

सोहाग ने लता की बाँह हिलाते हुए बड़े प्यार से कहा—"लता, उठो बेटी···उठो, देखो सब जग गये हैं।"

लता हड़बड़ाकर उठ बैठी। सपने में जिस दृश्य को देख रही थी उसकी धुंधली-सी परछाइयाँ अभी भी उसकी आँखों के आगे नाच रही थीं। वह कुछ क्षण पास खड़ी भाभी को देखती रही फिर एकाएक रोती हुई उससे लिपट गयी।

सोहागवती अचरज-भरे दु:खी स्वर में बोली—"क्या हुआ···लता, ऐसे नहीं रोते बेटी !" वह जितना ही उसे चुप हो जाने को कहती, लता उतने ही वेग से रोये जा रही थी।

बरामदे में खड़ी पुष्पा की माँ, पुष्पा को बुलाते हुए बोली—"लड़की बुरी तरह से रोये जा रही है, पुष्पा···जरा आओ तो।"

पुष्पा जाने को हुई मगर कुछ सोचते हुए रुक गयी···माँ से बोली—"सपना देखा होगा। रात-भर मुझे भी माँ जी सपने में दिखाई देती रही हैं···"

पुष्पा की माँ भेद-भरे स्वर मे बोली—"अच्छा···तो कुछ कहा उसने ?"

"पूरी बात तो याद नहीं,···लेकिन हाँ उन्होंने मेरे हाथ मे नारियल देते हुए कहा था—"यह उमा को दे देना पुष्पा···और कहना इसे संभाल कर रखेगी।"

"अच्छा···यह कहा! यह तो बड़े अच्छे शगुन की बात है···सचमुच दयावती एक देवी थी।"

पुष्पा भी भाव-विभोर होती हुई बोल उठी—"मुझे तो हमेशा उन्होंने प्यार दिया था, बदले में कुछ नहीं माँगा···"

सोहागवती लता को लेकर वाश बेसिन के पास खड़ी थी और हाथ-मुँह धोती हुई लता की हिचकियाँ सुनाई दे रही थीं। पुष्पा उसके पास जाकर खड़ी होती हुई बोली—"लता···सब्र करो ··माँ जी···तो अब वापस आयेंगी नहीं ·।"

लता मुँह पर छींटे दे तौलिया से मुँह पोंछने लगी। हिचकियाँ बन्द होते देख पुष्पा ने पूछा—"लता, माँ जी सपने में आई थी क्या?"

तौलिया हटा लता ने पुष्पा की ओर हैरानी से देखते हुए कहा—"आपको कैसे मालूम?"

"मुझे रात सपने में मिली थी, कहती थी···"

"क्या कहती थी··?" लता आश्चर्यचकित-सी थी।

बेजी की बहू भी उनके पास आकर खड़ी हो गयी थी, यह उन्हें मालूम नहीं था, पर ज्योंही पुष्पा ने उसे देखा तो बात बदलती हुई बोली—"बाद में बताऊँगी···चलो अब अन्दर चलो···तुम्हारे भइया देखेंगे तो इधर ही आ जायेंगे।"

आँगन में दरियाँ बिछा दी गयी थी। बीचोंबीच पण्डित जी विराजमान थे। उनके आगे थाल रखा था। थाल मे चावल और कुमकुम से वह कई तरह की आकृतियाँ-सी बना रहे थे और साथ ही साथ अनेक चीजों की माँग भी करते जा रहे थे। पुष्पा की माँ सफेद बढ़िया लेस लगी साड़ी पहिने कुशन बिछाये बैठी थी। फल का टोकरा साथ ही रखा था। पण्डित जी बार-बार कुछ गुनगुनाते और साथ ही साथ टोकरे में से फल निकालते जा रहे थे। आम और खरबूजे एक छाबेदार टोकरी मे डाल

दिए गए थे। गर्मियों का मौसम न होता तो अनेक तरह के फल हो जाते, मगर इन दिनों और मिलता भी कुछ नहीं।" पुष्पा की माँ सफाई देने के बहाने अपने बड़प्पन को भी प्रकट किए जा रही थी। 'असामी' अच्छी है यह समझते हुए पण्डित जी की फरमाइश भी बढ़ती जा रही थी···कभी बर्फी की माँग कर रहे थे तो कभी सूखे मेवों की। इतने बड़े अनुष्ठान में छत्तीस प्रकार के व्यंजन न सही, सोलहों प्रकार के मेवे तो होने ही चाहिए ···साथ में शुद्ध घी भी होना चाहिए। यह सब देख पुष्पा बोली—"हवन होगा क्या ?"

"हवन तो होगा ही बेटी, परन्तु इसके साथ मन्दिर में जाकर यज्ञ भी करना है।"

"वह किसलिए ?" सोहागवती ने अचकचाते हुए कहा।

पण्डित जी बोले—"यह हवन यहाँ घरवालों की शान्ति और खुश-हाली के लिए किया जा रहा है और जो यज्ञ मन्दिर में होगा वह उस देवी की आत्मा की शान्ति के लिए किया जायेगा।"

पुष्पा की माँ धनवन्ती से रहा नहीं गया, त्योरियाँ चढ़ाती हुई बोली—"यह तो आज ही सुन रहे हैं पण्डित जी ! हमारे यहाँ तो दो-दो बार यज्ञ नहीं होते, यहाँ के रिवाज ही कुछ और हैं।"

"आप ठीक कहती हैं बहन जी, हर देश हर शहर के रीति-रिवाज अलग-अलग ही होते हैं। मगर धर्म तो एक ही है। जो शास्त्रों में लिखा है, हम लोग उसी प्रकार से धर्म की व्याख्या करते हैं। मानने वाले सब मानते हैं, जो नहीं मानते उन्हें मजबूर भी नहीं किया जाता···हमारे विचार से जो अनुष्ठान किया जा रहा है, वह घर के लिए अलग है और मन्दिर में अलग किया जायेगा। और हाँ, पण्डितों के लिए खाने की व्यवस्था भी आप ही करेंगे। पण्डित कम से कम पाँच तो होंगे ही। यज्ञ करने में जो खर्च आयेगा वह तो आपको देना ही होगा।"

"कितना खर्च आयेगा ?" पुष्पा ने तेवर डालते हुए पूछा और साथ ही माँ से कहा—"मम्मी, आप भी बेकार में उलझ रही हैं। सीधा-सादा हवन होना था, आपने आकर काम और बढ़ा दिया है।"

"मैंने क्या किया है ? तुम हर बात पर दोष मुझे ही देती हो···जो

लिस्ट तुमने मुझे सुनाई थी, उसी के मुताबिक तो पण्डित जी को कहा गया है !"

"लिस्ट किसने दी थी ?" महेश ने आते हुए पूछा तो पुष्पा ने कहा—"पूछिए अपनी बेजी से, इन्होंने ही इनके हाथ से लिखवाई थी। मैं तो पहले ही कहती थी कि इतना आडम्बर न करो, पर यहाँ कोई सुनता भी कहाँ है ?"

पण्डित जी हाथ में लिये चावल थाली में फेंकते हुए उठ खड़े हुए और अँगोछे से हाथ पोंछते हुए बोले—"यह रहा आपका पूजा का सामान··· और मैं चला। पहले से जानता कि रुपया-पैसा खर्च करने से घबरा जाओगे तो आता ही नहीं। जरूरी काम छोड़कर आया हूँ।"

यह कहकर वह अपना थैला उठा चलने को हुए तो सोहागवती ने परेशान होते हुए कहा—"यह क्या कह रहे हैं पण्डित जी, पूजा बीच में छोड़ जाना क्या शोभा देता है आपको ? बैठिए यहाँ···"

"नहीं, मैं नहीं बैठूंगा, यहाँ मेरा अपमान हुआ है।"

बेजी बोली—"अपमान आपका नहीं मेरा हुआ है पण्डित जी ! मन्दिर से मैंने ही आपको बुलाया था। आपने जो-जो चीजें लिखवाई थीं वही मैंने महेश को लिखवा दीं—अब हवन और है और यज्ञ दूसरा है यह सब मैं क्या जानूं ?"

सोहागवती ने पण्डित जी के आगे हाथ जोड़ते हुए विनती-भरे स्वर में कहा—"पण्डित जी, अब आप शुरू कीजिए, आपका समय भी बरबाद हो रहा है और हमारा भी।"

महेश खिसक गया था और नरेश आ पहुँचा था। उसने आते ही सोहागवती से कहा—"भाभी, भइया को कुछ जरूरी काम पड़ गया है; वह जरा स्कूल गये हैं···कह गये है कि आप लोग पूजा करवा लें।"

"ठीक है, पूजा तो नरेश बेटा तुम दोनों भाइयों ने ही करवानी है। सोमेश तो दयावती का भाई लगता है। कोख से जन्म लिया या गोद लिया बात तो एक ही हुई।" बेजी एकदम से बोली।

'तो क्या सोमेश के सिर पगडी नहीं बाँधी जायेगी ?' इस प्रश्न से सब अवाक् से सोचते रह गए। जिस बात का किसी को अनुमान ही नहीं

था, वह व्यवधान बनकर सामने आ गई। सारी बात पण्डित जी को समझाते हुए बेजी ने कहा—"आप क्या कहते हैं पण्डित जी ?"

पण्डित जी कुछ समय तक सोचते रहे, फिर गहरी निगाहों से देखते हुए बोले—"संस्कार किसने किया था !"

"संस्कार···तो तीनों भाइयों ने ही किया था पण्डित जी···"

"तो फिर ठीक है, पगड़ी की रस्म भी तीनों भाई निबाहेंगे ··"

सभी ने एक राहत की साँस ली और पण्डित जी ने अपनी कार्यवाही प्रारम्भ की। महेश वहाँ से खिसका तो लौटकर नहीं आया। केवल नरेश ही विधिपूर्वक पूजा-पाठ करता रहा। एक मंत्र शुरू होता और पण्डित जी फरमाइश करते—"जल छिड़ककर ग्यारह रुपये रखिए यहाँ···।" फूल की पंखुड़ियाँ अंजुलि में रखते हुए कह उठते—"फल-मिठाई के साथ पैसे भी रखने हैं बेटा···"

पुष्पा की माँ बटुआ खोले बैठी थी। जब तक पूजा खत्म होती तब तक बटुआ भी खाली हो गया। फल-मिठाई जो भी उस स्थान पर रखी गयी थी, वह सब झोलों में डालते हुए पण्डित जी ने कहा—"नौ बज गये हैं, अब मुझे दूसरी जगह जाना है। यज्ञ करवाने का इरादा नहीं है तो कोई बात नहीं। यह सब तो श्रद्धा की बात होती है। विश्वास और श्रद्धा न हो तो दान-पुण्य और यज्ञ-हवन किस बात का···?" यह कहते हुए पण्डित जी बाहर निकलते हुए कहते गये—"मन्दिर तक किसी आदमी को भिजवा दीजिए, यह सामान मुझसे नहीं उठाया जायेगा।"

सुनीता चुपचाप खड़ी तमाशा देखे जा रही थी। माँ का आदेश था कि इस समय वह खामोश रहे। अब पण्डित जी की बात सुन हँसती हुई बोली—"इतना ढेर-सा सामान आपसे उठाया कैसे जायेगा पण्डित जी··· कहियें तो टैक्सी मँगवा दें···"

पुष्पा व्यंग्य से बोली—"टैक्सी की क्या जरूरत है, महेश की गाड़ी है, कहो चाचा से छोड़ आयें।"

महेश तो वहाँ था नहीं मगर हाँ, पुष्पा के पापा ऐन वक्त पर वहाँ आ पहुँचे। वह रात अपने लड़के के ससुराल वालों के यहाँ चले गए थे, अब उनका ड्राइवर गाड़ी में छोड़ने आया था। उसे देखते ही पण्डित जी ने

कहा—"देखिए···भगवान ने हमारे लिए गाड़ी भेज दी।" यह कहते हुए वह गाड़ी में आकर बैठ गए और तेजी से बोले—"माता जी, मेरा सामान गाड़ी में रखवा दीजिए···।" और फिर यह काम भी नरेश ने किया। तीन-तीन होने और मरतूओं से भरा टोकरा रखते हुए उसने मन ही मन सोचा—फल बेकार नहीं गया···सबका सब पण्डित जी के काम आ गया।

पूजा खत्म हुई तो भोजन की व्यवस्था का काम शुरू हो गया। बेचारे बालकृष्ण जी लड़की के ससुराल में शोक व्यक्त करने के लिए क्या आये कि लेने-देने की समस्याओं में उलझ गए। तकाजा किसी का न था—बस आन-बान और शान दिखाने का सवाल था। अपने लड़के के ससुराल वालों ने सलाह कुछ और दी थी और इधर पत्नी की हिदायतें कुछ और ढंग की थीं। धनवन्ती कहती—"हलवाई रोटियां सेंकने के लिए तो नहीं जुटाये। आलू-पूरी-छोले तो होंगे ही···दही बड़े और मटर पनीर भी बनेगा। खाना खाने वाले सिर्फ घर ही के लोग तो नहीं हैं, पूरी बिरादरी इकट्ठी होगी। दाल-रोटी खिलाकर क्या नाक कटवानी है? जो आयेगा वही पूछेगा—खाना कहां से आया है?"

बालकृष्ण जी परेशान और संजीदा से थे। बोले—"खाने पर क्या मोहर लगी होगी जो पूछेंगे कि खाना कहां से आया है?"

"मोहर तो लगी ही होगी। सभी जानते हैं कि इस वक्त का खाना समधियों के यहां से आता है! अमृतसर नहीं तो हम तो अमृतसर से आये हैं?"

"मगर ऐसे मौकों पर इस तरह का खाना बनवाना क्या अच्छा लगता है?" धनवन्ती झल्ला उठी—"जिस बात का पता नहीं उसमें टांग मत अड़ाओ। हरीश के ससुराल वाले इन बातों को नहीं जानते तो और बात है, उन्होंने आपसे क्या कह दिया मैं नहीं जानती। मगर इतना जरूर कहे देती हूं कि उन्होंने कुछ राय दी है तो वह सलाह यहां नहीं चलेगी। हमारे यहां जैसा पहले होता था वैसा ही होगा।" यह कहते हुए धनवन्ती खड़ी हुई और हलवाइयों को हिदायतें देने आंगन में आ पहुंची।

सहन के बाहर एक कोने में कनातें लगाकर हलवाइयों ने अँगीठियाँ लगा दी थी। उस गली के नुक्कड़ वाले हलवाई का इन्तजाम था, सो दूर कहीं भागा-भागी नहीं करनी पड़ी। उधर बारह बजते न बजते रिश्तेदार आना शुरू हो गए थे। करनाल से बेजी का लड़का कृष्ण तो पहले से ही बीवी के साथ आ गया था और दूसरा बलवीर भी अपनी पत्नी शान्ता को लेकर आ पहुँचा। सोहागवती कभी आने वालों को बिठलाती तो कभी उनके लिए ठण्डा शर्बत बनवा देती। बेजी अपने बहू-बेटों की खातिरदारी के लिए जितनी उत्सुक थी उतने ही अधिकारपूर्ण स्वर में बोल उठती थी—"अरी सोहाग, कहाँ हो? इधर बलवीर के लिए कुछ चाय-नाश्ता तो भिजवा दो।" और कभी अपने बड़े बेटे के लिए पुकार उठती—"सुबह से कृष्ण ने कुछ नहीं खाया। हलवाइयों का सामान ढोने-ढुलवाने में लगा रहा है, और नहीं तो लस्सी ही उसके लिए बनवा दो।" बेजी की हाय-तोबा सुन बालकृष्ण जी हलवाइयों के यहाँ आकर खड़े हो गये और कहने लगे—"भाई जी, जरा जल्दी से खाना तैयार करवाइये…" बालकृष्ण जी पैण्ट-कमीज बदल कुरता-पायजामा पहने बार-बार हलवाई के पास आ-जा रहे थे। ढीले-ढाले कुरते में भी उनका फूला-फूला घेरेदार गोलाइयाँ लिया पेट बुरी तरह से हिचकोले ले रहा था। एक तो मझोला कद ऊपर से थुलथुली देह पसीने से लथपथ हो रही थी। बार-बार पसीने को रूमाल से पोंछते जा रहे थे। मगर पसीना था कि बरसाती नाले की तरह छोटी-छोटी धारियाँ बनाता हुआ बहा जा रहा था। पुष्पा देखती तो बार-बार कह उठती—'पापा जी, आप बैठ जाइए। बार-बार क्यों अन्दर जा रहे हो? खाना जब तैयार होगा तो लग ही जायेगा।" मगर बालकृष्ण जी थे कि चक्कर लगाने से बाज नहीं आ रहे थे।

साँस उनकी धौंकनी की तरह फूल रही थी और ऊपर से बार-बार पानी पिये जा रहे थे। वह हाँफते-हाँफते बैठ जाते फिर उठ खड़े होते। पुष्पा मन ही मन खीज रही थी—

उमा ने बीमार भी होना था तो बस आज के ही दिन। महेश उसकी तीमारदारी करने के लिए ऊपर ही जाकर बैठ गया है। भाई साहेब आने-जाने वालों में मशगूल और नरेश शामियाने लगवाने में व्यस्त। लता

और सुनीता पानी पिलाने में लगी हैं। कितनी बार कहा था हलवाई से कि अपने साथ दो छोकरे ले आना। अब टेबलें लगवाऊँ या आनेवालियों को बिठलाऊँ? खाना-पीना खतम होते-होते तीन-चार बज जायेंगे, फिर पाँच बजे पगड़ी की रस्म होगी। बीच में फुर्सत जरा भी नहीं कि लेटकर कमर सीधी कर ली जाये। इधर घर से खाली पेट आईं औरतें बार-बार महल में आतीं और झाँक-झूँक कर फिर जा बैठतीं…भूख उन्हें बेहाल कर रही थी और खाना पकने की सुगन्ध बेचैन कर रही थी…।

आखिर में खाना मेज पर आ लगा। हलवाई का छोकरा प्लेटें पकड़ाते हुए बोल उठता—"जरा सब्र से काम लो बहन जी, पूरियाँ और आ रही हैं…यह लो कचौरी भी लो।" तीन-तीन मेजें डोंगों से भरी हुई थीं। आलू-छोले, दही-बड़े, मटर-पनीर के साथ-साथ खट्टी-मीठी चटनियाँ भी थीं और साथ में सलाद भी। इतने भर-भर कर पूरियाँ आतीं और झपटते हुए हाथों से खाली हो जातीं।

चटकारे ले-लेकर खानेवालियाँ कनखियों से इधर-उधर भी देखती हुई कह उठती—"बीच वाली बहू (नरेश की बीवी) के मायके वालों ने दिया है खाना।"

पुष्पा की माँ धनवन्ती ताक-झाँक करती हुई कान लगाये सुनतीं तो गर्व से फूल उठतीं। उनकी आँखों की चमक बढ़ जाती और चेहरे पर संतोष झलक उठता। प्रशंसा या वह पूरी नहीं सुन पा रही थीं, तो अपना परिचय देने के विचार से वह उन औरतों से पूछ बैठीं—"बहिन और लो न पूरी…तुम्हारी प्लेट तो बिलकुल खाली है।"

खानेवाली तृप्ति-भरी नजरों से उन्हें देखती हुई पूछ लेतीं—"आप पुष्पा की मम्मी हैं न…?"

"जी हाँ…"

"क्यों शर्मिन्दा करती हैं ! इतना सब तो किया है आपने···"

धनवन्ती थोड़ी देर रुकती, फिर चर्खी की तरह घूमकर दूसरी ओर जा पहुँचती। जहाँ भी जाती, अपना परिचय दे आती और बदले में जो सुनती उससे सन्तुष्ट हो उठती।

बाहर वालो का तांता खत्म हुआ तो घरवालो की बारी आई। सुबह से आवभगत करते-कराते थकान से उनकी भूख ही जाती रही थी। लता से खाया नही गया···पूरी का स्वाद तन-मन मे कड़वाहट भर गया—यह सब क्या आज ही के दिन होना था, जबकि माँ अब नही रही और यह माँ के चले जाने के उपलक्ष्य में हो रहा है ? भीतर-ही-भीतर उसे एक तूफान-सा उठता हुआ महसूस हुआ और उसी के साथ रुलाई के आवेग से वह सन्तुलन खो बैठी। सुनीता भागती हुई आई और उसकी पीठ सहलाती हुई बोली—"दीदी, क्या हो गया है आपको ? सुबह से रोये ही जा रही हो। देखो सभी लोग आपकी ओर ही देख रहे हैं।"

"मुझे कुछ अच्छा नही लग रहा सुनीता ! " उसने किसी तरह मे रुलाई रोकने के प्रयत्न में कहा तो सुनीता भी रो पड़ी···। उन दोनों को रोते हुए देख पुष्पा वहाँ आ पहुँची और धीरज बँधाने के प्रयत्न में कहा—"इतने दिन धीरज रखा है लता, अब भी धीरज से काम लो · "

सोहाग भी वही आ गयी थी, उसने पुष्पा को देखते हुए कहा—"तुम चलो पुष्पा, मैं इसे सँभालती हूँ।" पुष्पा खाना छोड़कर आ गयी थी। उसकी प्लेट थामे धनवन्ती उसका इन्तजार कर रही थीं। पुष्पा आई तो उसके हाथ में प्लेट देती हुई बोलीं—"अब जल्दी से खा लो, नहीं तो फिर कोई आ जायेगा।"

"और तुम···तुम्हारी प्लेट कहाँ है ?"

"मैं भी खा लेती हूँ, तुम्हारी जेठानी ने भी तो अभी नही खाया···"

"और बाकी सब खा चुके हैं क्या ?"

"नरेश, महेश और तुम्हारे जेठ का खाना कमरे में भिजवा दिया है ···ऊपर उमा के लिए प्लेट भिजवाई थी मगर उसने लौटा दी है। हाँ ····उसे तो थोड़ी-सी खिचड़ी भिजवा दी थी···डाक्टर ने हल्का खाना खाने के लिए कहा है।"

पुष्पा ने प्लेट में खाना डाल अपनी मम्मी को प्लेट दे दी और कहा — "तुमने भी तो सुबह से कुछ नहीं खाया···अब ढाई बज रहे हैं, खाली पेट पानी पीती रही तो तबीयत खराब हो जायेगी।" फिर कुछ याद करती हुई बोली—"पापा को खाना दे दिया है न?"

"हाँ, वह खा चुके है! मैंने ही उन्हें जोर देकर कमरे मे बिठलाकर खाना खिला दिया है। अब वह तुम्हारे कमरे में लेटे हुए हैं।"

"यह तो आपने अच्छा किया है मम्मी, मैं देख रही थी पापा बुरी तरह से थके हुए थे।"

यह बातें कर ही रही थी कि उधर से नरेश ने आते हुए कहा— "पुष्पा, लता कहाँ है? उसका फोन आया है।"

"उसे भाभी अपने कमरे मे ले गई है, आप उसे वही जाकर कह दो।"

नरेश के चले जाने के बाद पुष्पा की मम्मी ने धीरे से कहा—"अब ···शाम को क्या करना होगा?" फिर जल्दी से बात बदलने की कोशिश में बोली—"उमा के पापा तो आये नहीं, पगडी हम ही मँगवा लेते हैं, सबके सामने बहुत बुरा लगेगा।"

"जैसे मम्मी तुम ठीक समझो कर लो, उमा ने तो कुछ बताया नहीं; और हां, अब पगड़ी लायेगा कौन?"

दोनो ही सोच मे पड़ गयी और उधर हलवाई का छोकरा थाली में गर्म-गर्म पूरियाँ लेकर आ पहुँचा। फूली-फूली लाल-लाल पूरियाँ देख पुष्पा ने जल्दी से दो पूरियाँ उठायी और माँ की प्लेट मे डालती हुई बोली— "तुमने तो मम्मी कुछ खाया ही नहीं!" कहने के साथ ही उसने दो पूरियाँ अपनी प्लेट में भी डाल ली और उस छोकरे से बोली—"दही बड़े ले आओ, और हाँ कचौरियाँ भी।"

"भल्ले-कचौरियाँ तो खत्म हो गये हैं, हाँ आलू की सब्जी है···कहो तो ले आऊँ?"

धनवन्ती चट से बोली—"बड़े खत्म हो गये? अभी-अभी तो मैंने देखा था—दही-बड़ों से पतीला भरा हुआ था।"

"खाने वाले क्या कम थे?" छोकरा मुस्कराते हुए पीठ मोड़ चल

दिया तो धनवन्ती ने कहा—"काम के वक्त तो इतने आदमी नहीं थे। अब हलवाई तीन-तीन बैठे हैं और तीन छोकरे भी ले आया है। मुझे लगता है इन्होंने सामान अपनी दुकान पर भिजवा दिया होगा। बाहर बैठे हैं, कोई देखभाल करने वाला तो खड़ा नहीं···खा-पीकर सब किनारा कर गये हैं।"

पुष्पा बोली—"हाँ, मुझे भी यही लग रहा है। थोड़ी देर पहले मैं गयी थी बाहर, पतीला भरा हुआ था दही बड़े का और उस समय तो खाना खाने वाले ज्यादा थे भी नहीं। पूरियों से टोकरी भरी हुई थी और मटर-पनीर तो एकदम नहीं बचे।"

धनवन्ती ने प्लेट खाली करके मेज पर रख दी, फिर तेजी से बाहर गयी। देखा—हलवाई अपना सामान समेट रहे हैं। घी की कढ़ाई नीचे उतरी पड़ी है···पूरियों का नामोनिशान ही नहीं···उसने आश्चर्य और गुस्से से पूछा—"अभी से खत्म कर बैठे हो···अभी तो खाने वाले अन्दर बैठे हैं।"

हलवाई तुनककर बोला—"जितना सामान दिया था, सब खलास हो गया। सुबह दस बजे से लगे हुए हैं। हमारे छोकरों ने चाय के लिए दूध माँगा तो वह भी नहीं मिला, दुकान पर जाकर चाय पिलाई है। अब तीन बजने को आये। हमने अपनी दुकान का काम भी तो देखना है।" कहने के साथ ही उसने अपने लड़के से कहा—"चल रे चन्दू, जल्दी कर, यह बर्तन-भांडे ले जा।"

बड़े पतीले खाली थे मगर ये छोटे पतीले···ये कहाँ से आ गये? धनवन्ती ने मन ही मन कहा फिर दहलीज की सीढ़ी उतर उनके पास जा पहुँची और बोली—"इन पतीलों में क्या है, जरा ढक्कन उठाओ तो?"

लड़के ने मालिक की ओर देखा तो हलवाई तमककर बोला—"देखना क्या चाहती हो,···इस पतीले में आलू की सब्जी है, हमने भी तो खाना खाना है···।"

दूसरे पतीले का ढक्कन धनवन्ती ने उठाया तो हैरान रह गयी। पतीला, मटर-पनीर से भरा हुआ था और दूसरी ओर एक बड़ा लिफाफा रखा था जो बाहर से घी से तर-बतर हो रहा था। "इस लिफाफे में क्या

है ?" पुष्पा की माँ आगे बढ़ते हुए लिफाफा देखने को हुईं कि हलवाई ने जल्दी से लिफाफा बड़े पतीले में डालते हुए कहा—"जो बचा-खुचा है इसी में डाल दिया है। हमने नहीं खाया कोई बात नहीं, पर ये लड़के तो खायेंगे न, क्या इन्हें भी भूखा रखना है ?" कहते-कहते हलवाई गुस्से से उठ खड़ा हुआ और बोला—"चलो गिरधारी, चलें···यहाँ खाने-पीने को कुछ नहीं मिलेगा।"

पुष्पा की माँ हक्की-बक्की-सी रह गयीं। एक तो चोरी ऊपर से सीना-जोरी। साफ-साफ लग रहा था कि लिफाफे में पूरियाँ नहीं, बड़े डाल रखे हैं और उस तरफ जो अलमूनियम का बड़ा-सा पतीला रखा था, वह उस हलवाई ने खुद ही उठा लिया था, ढक्कन उतार देखने की नौबत ही नहीं आई और फिर ऊपर से तमतमाता हुआ कह रहा है, "हमें खाना नहीं मिला।"

धनवन्ती का मूड एकदम खराब था। कुछ समय पहले जिस प्रशंसा से वह फूली नहीं समा रही थी, उस सब पर इस हलवाई के बच्चे ने पानी फेर दिया था।

माँ को भीतर आते न देख पुष्पा भी बाहर आ गयी और ठगी-सी खड़ी माँ को देख बोली—"क्या हुआ मम्मी ?"

"होना क्या था, यह दो टके के हलवाई मेरी इतनी बेइज्जती कर गये हैं कि क्या बताऊँ ?"

"और बाकी का सामान ?"

"सामान कहाँ है, वह तो सब उठा ले गये हैं। जला-सड़ा घी कनस्तर में रखा है और यह खाली कढाई पड़ी है···।"

"सब कुछ खत्म कर गये हैं···अब सोहाग दीदी क्या खायेंगी···?"

"मैं क्या बताऊँ ! सबको हाथ पकड़-पकड़ कर खिलाने को कहती रही, खुद ही कोई खाना न चाहे तो जबरदस्ती मुँह में कौन खिला सकता है ? हजार बार कहा था कि आओ खा लो। मगर नहीं, इधर-उधर हुए किनारा करती रही।"

इस बात के लिए पुष्पा को भी बुरा लगा था। उसने भी दो बार प्लेट में खाना डाल जेठानी को देना चाहा था, मगर सोहागवती आना-

कानी करती हुई उधर से उधर चली जाती थी। उसे अपनी मम्मी के लिए अफसोस हो आया। सुबह से बेचारी इन्ही झंझटों में लगी हुई है, उनकी मदद करना तो एक ओर रहा, खुद अपने आपसे कोई खाना भी नही खा सकता। माँ की बाँह पकड उसने गुस्से से कहा—"तुम क्यों फिक्र करती हो, नही खाया तो बना कर खा लेंगी। मिन्नत-मोहताजी बहुत हो चुकी, चलो···कमरे में चलकर थोडा आराम कर लो।"

"आराम क्या करना है ? मेरा तो दिल ही जल रहा है···इतना ढेर-सा खाना था, नासपीटे उठाकर चलते बने। किसी को क्या···जिसका खर्च होता है, दु.ख उसी को ही होता है ?" गुस्से में चलते-चलते धन-वन्ती कहे जा रही थी और उधर रसोई के दरवाजे के बीच खड़ी लता सुन रही थी। आखिरी शब्दों पर उसने गौर से सोचा—जिसका खर्च होता है ! किसका खर्च हुआ है, पुष्पा चाची का या किसी और का ? किसी और का खर्च होता तो पुष्पा चाची की माँ को दर्द क्यों होता ?

दुःख और आवेश से भरी वह ऊपर उमा चाची के पास जा पहुँची। सोहागवती ऊपर थी। उसने उमा चाची के सामने ही बडी भाभी से पूछा —"भाभी, सच-सच बताइए, आज के खाने पर खर्च किसका हुआ है ?"

सोहागवती उमा के पलँग के पास बैठी थी। वह कुछ क्षण लता की ओर देखती रही, फिर धीरे से पूछा—"क्यों, क्या बात है ?"

"बात कुछ नही···मैं सिर्फ यही पूछने आयी हूँ कि खाना किसने बनवाया है ? '

उमा हैरान लता की ओर देख रही थी। जिस आवेश और गुस्से से लता का चेहरा तमतमा रहा था, ऐसा तो रूप उसने कभी नही देखा था। लता आवेश से काँप-सी रही थी···।

सोहाग से कुछ कहते नही बना, वह अपराधिन-सी असहाय-सी उसकी ओर देखती रही।

लता ने उमा की ओर देखते हुए कहा—"उमा भाभी···आप बताओ खाना किसने बनाया है ? बडी भाभी बताना नही चाहती और आप मुझसे छिपायेंगी भी नही।"

"लेकिन·· बात क्या हो गयी ?"

"बात कुछ भी हो भाभी, मैं यह जानना चाहती हूँ कि खाना किसने बनवाया है और क्योंकर बनवाया है ? आप नहीं बतायेंगी तो मैं नीचे जाकर सबके सामने पूछूंगी। मुझे पूछने का पूरा-पूरा हक है···मैं अब छोटी नहीं कि इन बातों के लिए मेरी राय न ली जाये।"

उमा और सोहाग हतप्रभ-सी बैठी एक-दूसरी को देखती रहीं, फिर सोहाग ने ही सहज होने की कोशिश में कहा—"खाने का प्रबन्ध पुष्पा की माँ की ओर से किया गया है।"

लता दाँत भींचती-सी सिर हिलाती हुई बोली—"समझ गयी···तभी यह बात हो रही थी···"

"क्या बात हो रही थी ··?" उमा ने पलँग पर से उठकर बैठते हुए उसका हाथ पकड़ने की कोशिश में कहा तो लता तड़पकर बोली—"इस खाने पर जो खर्च आया है वह पुष्पा भाभी की मम्मी नहीं देंगी···हम देंगे—मैं अभी बड़े भइया को जाकर कहती हूँ···"

सोहागवती ने तेजी से लता को पकड़ते हुए कहा—"पागल मत बनो लता···!"

"हाँ-हाँ, मैं पागल हूँ···इतने दिनों तक चुप लगाये रही तो भी पागल थी···और अब भी पागल हूँ···।" उसने अपने-आपको छुड़ाने की चेष्टा की तो सोहाग ने कसकर बाँह खींचते हुए कहा—"जो कहना है आराम से कहो, नीचे सबके सामने तमाशा बनाने की कोई जरूरत नहीं। कहो क्या कहना है ?"

"मैं भइया के सामने कहूँगी···बेशक आप नरेश भइया और महेश भइया को भी बुला लो। मैं सबके सामने ही यह बात कहूँगी···"

"बुला लेंगे···तुम जरा शान्त तो हो जाओ!"

लता एकदम से रो उठी—"आप नहीं बुलायेंगी, मुझे खुद ही बुलाना होगा।" कहने के साथ ही वह अपने को भाभी की पकड़ से छुड़ा लेने की कोशिश में बोली—"मुझे जाने दो भाभी···"

उमा ने लाचारी से कहा—"भाभी, आप बुला ही लीजिए भइया को!"

"ठीक है, मैं अभी बुलाती हूँ···तुम इसे सँभालो···"

सोहाग जाने को हुई तो देखा, महेश सीढ़ियाँ चढ़ता हुआ ऊपर आ रहा है। उसने तेजी से उसके पास जाते हुए कहा—"महेश, तुम्हारे बड़े भइया कहाँ हैं ?"

"नीचे बैठे हैं···क्यों ?"

"उन्हें जल्दी से बुला लाओ, कहो अभी आयें···जरूरी काम है और हाँ देखना, किसी के सामने नहीं अलग से कहना···"

लता वहीं से तेजी से बोली—"नरेश भइया को और पुष्पा भाभी को भी बुला लो।"

"महेश···तुम नरेश को भी कहना ऊपर आ जाये और पुष्पा हो तो उसको भी।"

महेश ठिठककर खड़ा हो गया फिर धीरे से पूछा—"क्या बात है ?"

"तुम बुला तो लाओ।"

उमा के पास से उठती हुई लता आलमारी के पास आकर खड़ी हो गई, फिर आलमारी खोल उसने ड्राइवर से एक लिफाफा निकाला और आलमारी बन्द करके एक ओर आकर खड़ी हो गयी। पिछले कई दिनों से जिस साहस को जुटाने में वह असमर्थ हो चुकी थी, वही साहस इन आवेश के क्षणों में उसे उद्वेलित कर रहा था। आवेश के क्षण स्थायी नहीं होते, इस विचार से वह भयभीत और विचलित हो रही थी।

उमा ने और सोहाग ने उसे अपने पास बुलाने की चेष्टा की, मगर वह वहीं बुत-सी बनी खड़ी रही···एक-एक लमहा उसे युग-सा जान पड़ रहा था···कहीं भइया नहीं आये तो ··?

यह विचार आते ही वह सीढ़ियों की ओर जाने लगी—फिर एकाएक पीछे हट गयी। महेश, नरेश और बड़े भइया ऊपर आ रहे थे, यह देख···उसे राहत-सी महसूस हुई, लेकिन अगले ही क्षण उसने अपने को झटका देते हुए उस गुस्से और आवेश को अपना अवलम्ब स्वीकारते हुए बड़ी दृढ़ता से कहा—"पुष्पा भाभी नहीं आयी···?"

"नहीं···"

"क्यों ?"

"उन्हें बुलाने की क्या जरूरत है ?"

"जरूरत है तभी तो कह रही हूँ।"

"लेकिन बात क्या है, कुछ बताओ तो सही, क्या पुष्पा भाभी ने कुछ कहा है ?"

लता उसी आवेश में थी, इसी से तेजी से बोली, "पुष्पा भाभी ने कहा है या उनकी मम्मी ने···मैं पूछती हूँ आप सबने यह सब होने ही क्यों दिया···?"

अब सोमेश ने गुस्से और अचरज से कहा—"मुझे समझ नहीं आती कि ऐसी क्या बात हो गयी है, अगर कुछ हुआ भी है तो बताती क्यों नहीं ?"

"मैंने जो कहना था वह भाभी को कह दिया है, और जो बाकी कहना है, वह पुष्पा भाभी के सामने कहूँगी···" यह कहते-कहते लता की आवाज रोष और रुलाई से अवरुद्ध हो गयी।

महेश-नरेश अवाक् से एक-दूसरे की ओर देख रहे थे और सोमेश उमा और सोहाग से पूछने लगे—"आखिर बात क्या है···?"

लता ने रोते हुए कहा—"आप तो बड़े थे भइया, आपने भी लेने से इन्कार नहीं किया !"

सोमेश कुछ पूछते कि उमा ने कहा—"लता आज के खाने की बात कर रही है···इसे बुरा लगा है कि खाना ताई जी की ओर से क्यों दिया गया है।"

लता रुलाई रोकते हुए बोली—"माँ यह सब नहीं चाहती थी··· यकीन न हो तो देख लीजिए···माँ ने क्या-क्या लिखा है !" कहने के साथ ही उसने लिफाफा बड़े भइया के हाथ में दे दिया।

लिफाफा खोल सोमेश ने चिट्ठी पढ़ी और फिर महेश तथा नरेश के आगे करते हुए कहा—"मैं तो पहले से ही कहता रहा हूँ कि यह सब नहीं होना चाहिए। मगर मेरी किसी ने सुनी ही नहीं।"

सोहागवती जल्दी में बोली—"सुनता कौन, जिसने किया या करवाया है उसको तो कोई रोक नहीं सका, इस मामले में हमारी सुनवाई ही क्या थी ?जो कुछ हुआ है बेजी की मेहरबानी से ही हुआ है···वही सुनाती

रही थी पुष्पा को।"

नरेश और महेश भी चिट्ठी पढ़ चुके थे, कुछ सोचते हुए महेश ने पूछा—"नरेश, तुम्हें तो मालूम होगा ही कि आज इस खाने वगैरा पर कितना खर्च हुआ है ?"

"ठीक से तो मालूम नहीं ···"

सोमेश ने तलखी से कहा—"तो मालूम कर लो···जो भी खर्च हुआ है वह सब उन्हें देना है। तुम अगर नहीं कह सकते तो मैं कह दूंगा।"

"नहीं-नहीं, आप रहने दीजिए···खामखाह में बात बढ़ जायेगी···" सोहागवती ने भयभीत होते हुए कहा।

सोमेश गुस्से से बोले—"तुमने पहले भी मुझसे यही बात कही थी। उसी समय अगर कह दिया होता तो यह नौबत ही न आती। इतने बड़े आडम्बर की जरूरत क्या थी ? दुःख और शोक के अवसर पर भी खाने-पीने का इतना बड़ा जश्न···!"

"पुष्पा को चाहिए था कि वह अपनी माँ को मना कर देती···"

नरेश ने सहमते हुए जवाब दिया—"वह कैसे कहती ? बेजी ने ही तो कहा था कि सब बिरादरी वालों को खिलाना है और खाना अच्छी तरह से बनवाना है···।"

उमा और सोहाग भी चिट्ठी पढ़ चुकी थी। माँ जी ने साफ-साफ लिखा था—'मेरी मृत्यु पर कहीं से, किसी से कुछ नहीं लेना ! और फिजूल के रीति-रिवाजों पर खर्च नहीं करना। तेरहवीं के दिन यतीमों को खाना खिलाया जाये और पगड़ी की रस्म के साथ कोई और लेन-देन नहीं होना चाहिए···यही मेरी अन्तिम इच्छा है।'

माँ की अन्तिम इच्छा यही थी। लेकिन अब जो हो गया है उसका निवारण कैसे किया जाये ? सभी अपने-अपने विचार से यही सोच रहे थे कि लता ने आकर कहा—"आप में से कोई नहीं कह सकता तो मैं पुष्पा भाभी से कह देती हूँ···मैंने तो इसीलिए कहा था कि वह भी आ जाती।"

इस समय पुष्पा को कहना क्या इतना आसान है ? नरेश ने मन ही मन कहा, फिर लता से बोला—"मैं पुष्पा की मम्मी से तो नहीं उसके पापा जी से बात कर लेता हूँ !"

"बात करने से कुछ नही होगा, सीधे से जाकर कह दो कि हम यह खर्च आपसे नही करवाना चाहते। बिरादरी के आगे जो इज्जत रखने की बात थी, वह तो पूरी हो चुकी है···अब मेहरबानी करके वह रुपये ले लीजिए।" सोमेश ने जल्दी से फैसला सुनाने के ढंग से कहा—फिर उठते हुए बोले—"मैं नीचे चलता हूँ·· लोग आ रहे होंगे।" कहने के साथ ही सोमेश नीचे उतर गये।

उमा ने महेश से कहा—"आप क्यों नहीं कुछ कहते? नरेश भइया की बात और है, उनका कहना मुश्किल है। आप ही जाकर कह दीजिए।"

"मैं···मैं क्या कहूँ?" महेश ने अटकते हुए कहा।

"कहना क्या है!" आप रुपये उनके हाथ मे दे दीजिए और कहिए कि माँ जी की यह इच्छा थी कि···"

"यह सब कहने की क्या जरूरत है?" सोहागवती ने उसे समझाते हुए कहा—"उनकी जो इच्छा थी, वह हमें बताने तक की थी। हमने समझ लिया यही बहुत अच्छा हुआ। अगर यही पहले मालूम होता तो शुरू से ही बेजो को रोक दिया होता।"

"लता, तुमने पहले से ही चिट्ठी क्यों नही दे दी थी?"

"मुझे क्या मालूम था कि आज का खाना पुष्पा भाभी की मम्मी खिलायेंगी?"

"खाना तो बिरादरी वालों के लिए था, घरवालों ने तो चखा ही नही। उमा ने वैसे नहीं खाया। मेरे लिए बचा ही नहीं और लता से खाया नही गया!"

सोहागवती पश्चात्ताप करती हुई भी सहज हो आयी थी···एकाएक उसे अपने बड़े होने का एहसास हो आया···उसे लगा···घर-गृहस्थी का भार मैं ही तो उठा रही हूँ। इतने दिनों तक यह व्यवस्था, यह खर्च मैंने ही तो सँभाला है। फिर क्या बात है कि मैं सिर उठाकर इस बात के लिए उन्हें समझा नहीं सकती? जो बात यह तीनों भाई नही कह सकते, वह मैं कह सकती हूँ···। एक साहस···एक दृढ़ता उसके तन-मन को झकझोर गई। उसने सहज परन्तु दृढ़ता से कहा—"तुम चिन्ता मत करो नरेश···मैं पुष्पा को भी समझा दूँगी और उनकी मम्मी को भी···और हाँ एक काम

अब तुम लोगों को करना होगा, वह यह कि पगड़ी के साथ रुपये आदि नहीं लेने।"

"ठीक है, यह हम कह देंगे।"

नरेश एकाएक उठता हुआ बोला—"भाभी, आप यहीं ठहरिए, मैं नीचे से होकर अभी आता हूँ।"

महेश ने उसकी बाँह पकड़ते हुए उसे रोकते हुए कहा—"आपको जाने की जरूरत नहीं···यह लीजिए···" पेंट की जेब में से बटुआ निकालते हुए महेश ने दो हजार के नोट निकाले और उन्हें सोहागवती को देते हुए कहा—"यह लो भाभी···यह रुपये आप पुष्पा की मम्मी को दे देना···"

लता पास में खड़ी थी। झिझकती हुई बोली—"अगर बुरा न मानो तो एक बात कहूँ···यहाँ यह रुपये भी रखे हैं। पिछली गर्मियों में माँ जब बीमार हुई थी तो बैंक से निकलवाये थे। तब से यह रुपये इसी लिफाफे में रखे हुए हैं। माँ ने कहा था, अगर मुझे कुछ हो जाए···तो यह रुपये खर्च कर लेना।"

कहने के साथ ही वह फिर से रो पड़ी, उसे देख सभी की आँखों में आँसू आ गये। लिफाफा उसके हाथ मे देते हुए नरेश ने कहा—"यह रुपये तुम सँभालकर रखो लता···माँ के आशीर्वाद से हमारे पास सब कुछ है।"

"नहीं भइया···यह रुपये मैं नहीं रखूँगी। पाँच हजार हैं···अगर खर्च नहीं किए तो जमा भी नहीं करेंगे···आप इन्हें माँ की ओर से दान में दे दीजिएगा···।"

सोहाग और उमा ने कहा—"लता ठीक कहती है, आप इन्हें किसी अनाथालय में दे दीजिए।"

"ठीक है···अभी तुम अपने पास रखो लता, हम लोग सोच लेंगे··· फिर तुमसे ले लेंगे···।" कहने के साथ ही महेश और नरेश उठ खड़े हुए। महेश ने उमा से पूछा—"तुम्हारी तबीयत ठीक नहीं है, यहीं आराम करना। नीचे आने की जरूरत नहीं।" यह कहकर वह नीचे चले गये। उमा ने कलाई देखी···घड़ी साढ़े तीन बजा रही थी। सोहाग चौंकती

हुई बोली—"इतनी देर हो गयी···नीचे बैठी हुई औरतें क्या सोच रही होंगी···"

"आप बहुत डरती हैं भाभी···पुष्पा दीदी तो नीचे हैं ही···"

"लेकिन फिर भी, मेरा होना तो जरूरी है।"

सोहाग नीचे आयी तो देखा, बेजी और उसकी बड़ी बहू बरामदे में बिछी दरी पर लेटी हुई हैं। पुष्पा के बच्चे सुरेश और मंजू नये-नये कपड़े पहने बरामदे में वाश-बेसिन के ऊपर लगे शीशे के आगे खड़े बाल सँवार रहे हैं। सोहाग ने पास आते हुए मंजू की फ्राक को हाथ लगाते हुए पूछा—"बड़ा अच्छा फ्राक पहना है।"

सुरेश चट से बोला—"ताई जी, मेरी बुशर्ट कितनी अच्छी है···और यह निकर भी बहुत अच्छी है···।" फिर धीरे से सुरेश ने उसके कान के साथ मुंह लगाते हुए कहा—"यह नानी जी लाई हैं हमारे लिए···लेकिन ताई जी, बताना किसी को नहीं। मम्मी ने मना किया है। मंजू कोभी मम्मी ने मना किया है। अगर आप मम्मी से कहेंगी तो मम्मी हमारी पिटाई कर देंगी···"

"मैं नहीं कहूँगी सुरेश···" कहने के साथ ही उसने पूछा—"तुम्हारी मम्मी हैं कहाँ ?"

"अन्दर कमरे में हैं, नानी जी के पास।"

कमरे का दरवाजा कुछ भिड़ा हुआ था। सोहाग ने झाँककर देखा; पुष्पा की मम्मी सूटकेस खोले कपड़े निकाल रही हैं और चारपाई पर रखती हुई कहे जा रही हैं—"यह देखो, तुम्हारे लिए लाई हूं···"

पुष्पा साड़ी खोले पूछने को ही थी कि तभी सोहागवती दरवाजा खोल कमरे में दाखिल हुई। उसे देखते ही पुष्पा का चेहरा फक हो गया और उसकी मम्मी चारपाई पर रखे कपड़े उठा जल्दी से सूटकेस में रखती हुई बोली—"आओ सुहाग, आओ···मैं तो पुष्पा से पूछ ही रही थी कि सुहाग है कहाँ। तुमने तो खाना भी नहीं खाया···! कहाँ थी ?"

पुष्पा खिसियानी-सी बोली—"मैंने तो इधर-उधर सारा देखा··· आपका पता ही नहीं चला···"

"मैं ऊपर थी।"

अब तुम लोगों को करना होगा, वह यह कि पगड़ी के साथ रुपये आदि नहीं लेने।"

"ठीक है, यह हम कह देंगे।"

नरेश एकाएक उठता हुआ बोला—"भाभी, आप यहीं ठहरिए, मैं नीचे से होकर अभी आता हूँ।"

महेश ने उसकी बाँह पकड़ते हुए उसे रोकते हुए कहा—"आपको जाने की जरूरत नहीं···यह लीजिए···" पेंट की जेब में से बटुआ निकालते हुए महेश ने दो हजार के नोट निकाले और उन्हें सोहागवती को देते हुए कहा—"यह लो भाभी···यह रुपये आप पुष्पा की मम्मी को दे देना···"

लता पास में खड़ी थी। झिझकती हुई बोली—"अगर बुरा न मानो तो एक बात कहूँ···यहाँ यह रुपये भी रखे हैं। पिछली गर्मियों में माँ जब बीमार हुई थीं तो बैंक से निकलवाये थे। तब से यह रुपये इसी लिफाफे में रखे हुए हैं। माँ ने कहा था, अगर मुझे कुछ हो जाए···तो यह रुपये खर्च कर लेना।"

कहने के साथ ही वह फिर से रो पड़ी, उसे देख सभी की आँखों में आँसू आ गये। लिफाफा उसके हाथ में देते हुए नरेश ने कहा—"यह रुपये तुम सँभालकर रखो लता···माँ के आशीर्वाद से हमारे पास सब कुछ है।"

"नहीं भइया···यह रुपये मैं नहीं रखूँगी। पाँच हजार हैं···अगर खर्च नहीं किए तो जमा भी नहीं करेंगे···आप इन्हें माँ की ओर से दान में दे दीजिएगा···।"

सोहाग और उमा ने कहा—"लता ठीक कहती है, आप इन्हें किसी अनाथालय में दे दीजिए।"

"ठीक है···अभी तुम अपने पास रखो लता, हम लोग सोच लेंगे··· फिर तुमसे ले लेंगे···।" कहने के साथ ही महेश और नरेश उठ खड़े हुए। महेश ने उमा से पूछा—"तुम्हारी तबीयत ठीक नहीं है, यहीं आराम करना। नीचे आने की जरूरत नहीं।" यह कहकर वह नीचे चले गये। उमा ने कलाई देखी···घड़ी साढ़े तीन बजा रही थी। सोहाग चौंकती

हुई बोली—"इतनी देर हो गयी···नीचे बैठी हुई औरतें क्या सोच रही होंगी···"

"आप बहुत डरती हैं भाभी ··पुष्पा दीदी तो नीचे हैं ही···"

"लेकिन फिर भी, मेरा होना तो जरूरी है।"

सोहाग नीचे आयी तो देखा, बेजी और उसकी बड़ी बहू बरामदे में बिछी दरी पर लेटी हुई हैं। पुष्पा के बच्चे सुरेश और मंजू नये-नये कपड़े पहने बरामदे में वाश-बेसिन के ऊपर लगे शीशे के आगे खड़े बाल सँवार रहे है। सोहाग ने पास आते हुए मंजू की फ्राक को हाथ लगाते हुए पूछा —"बड़ा अच्छा फ्राक पहना है।"

सुरेश चट से बोला—"ताई जी, मेरी बुशर्ट कितनी अच्छी है···और यह निकर भी बहुत अच्छी है···।" फिर धीरे से सुरेश ने उसके कान के साथ मुँह लगाते हुए कहा—"यह नानी जी लाई हैं हमारे लिए···लेकिन ताई जी, बताना किसी को नहीं। मम्मी ने मना किया है। मंजू को भी मम्मी ने मना किया है। अगर आप मम्मी से कहेंगी तो मम्मी हमारी पिटाई कर देंगी···"

"मैं नहीं कहूँगी सुरेश···" कहने के साथ ही उसने पूछा—"तुम्हारी मम्मी हैं कहाँ?"

"अन्दर कमरे में हैं, नानी जी के पास।"

कमरे का दरवाजा कुछ भिड़ा हुआ था। सोहाग ने झाँककर देखा, पुष्पा की मम्मी सूटकेस खोले कपड़े निकाल रही हैं और चारपाई पर रखती हुई कहे जा रही हैं—"यह देखो, तुम्हारे लिए लाई हूँ···"

पुष्पा साड़ी खोले पूछने को ही थी कि तभी सोहागवती दरवाजा खोल कमरे में दाखिल हुई। उसे देखते ही पुष्पा का चेहरा फक हो गया और उसकी मम्मी चारपाई पर रखे कपड़े उठा जल्दी से सूटकेस में रखती हुई बोली—"आओ सुहाग, आओ···मैं तो पुष्पा से पूछ ही रही थी कि सुहाग है कहाँ। तुमने तो खाना भी नहीं खाया···! कहाँ थीं?"

पुष्पा खिसियानी-सी बोली—"मैंने तो इधर-उधर सारा देखा··· आपका पता ही नहीं चला···"

"मैं ऊपर थी।"

"क्यों···उमा ठीक तो है न ?"

"हाँ···ठीक है।"

पुष्पा की मम्मी बात बदलने के ढंग से बोली—"पण्डित जी ठीक चार बजे आयेंगे हवन करने को। तब उमा को भी वहाँ बैठना होगा। सुना है पण्डित आर्य समाज के मन्दिर का है ?"

"जी ··हाँ। हवन वैदिक रीति से होगा। माँ जी आर्य समाज मंदिर में जाती थीं···"

सोहाग बात का जवाब दिये जा रही थी। बड़े से लिफाफे के भीतर रखा रुपयों का लिफाफा उसके भीतर खलबली मचाये जा रहा था। बात करने की हिम्मत जुटाती तो शब्द होंठों के भीतर तक ही रह जाते। उसे लगता जैसे उसका गला सूख रहा है···और टाँगें काँप रही हैं। उसे असमंजस में खड़े देख पुष्पा ने कहा—"बैठो दीदी···आओ यहाँ बैठो···तुम कुछ परेशान-सी दिखाई दे रही हो···?"

घबराहट के मारे सोहाग की जबान सही शब्दो का उच्चारण नहीं कर सकी···मुँह से यों ही निकल गया—"बच्चे तैयार होकर कहीं जा रहे हैं क्या ?"

"कौन···नही···नही तो।" पुष्पा सोहाग से कहीं अधिक डरती हुई लड़खड़ा उठी।

पुष्पा की माँ स्थिति को सँभालने के आशय से बोली—"बाहर जाने को मचल रहे थे, मगर जायें भी तो कहाँ·· यों ही हाथ-मुँह धो···कपड़े बदलवा दिए हैं···"

"अरी पुष्पा, बेजी का लड़का है न यहाँ···वही जो यहीं दिल्ली में रहता है, क्या नाम बताया उसका ?"

"बलवीर।"

"हाँ—हाँ, वही, उसे जरा बुलाओ तो ! अब देखो न, अभी तक तो उमा के पापा आये नही, और देर इन्तजार क्या करनी है···बलवीर से ही पगड़ी मँगवा लेते हैं···"

"जरा बुलाओ न उसे···जैसा नरेश वैसे ही महेश है···"

"माँ नही तो ताई तो जिन्दा बैठी है ? यह लो रुपये पुष्पा, जाकर

कहो उससे कि ऐसी ही पगड़ी ले आये।"

मेज पर रखा एक लिफाफा उठाते हुए पुष्पा की माँ ने पगड़ी का कपड़ा निकालते हुए कहा—"छः गज है···पगड़ी का तो शगुन ही है, बाद को तुम साड़ी समझ पहन लेना···"

पुष्पा ने लिफाफा हाथ में लेते हुए कहा—"अगर इस तरह का कपड़ा न मिला तो?"

"तो कोई भी सही···यह लो पैसे···!"

सौ का नोट और लिफाफा लेकर पुष्पा कमरे से बाहर निकल आयी और पीछे-पीछे सोहाग भी···सोहाग के हाथ में लिया हुआ लिफाफा उसे उसकी खिल्ली उड़ाता हुआ जान पड़ा। वह ठगी-सी परास्त-सी अपने कमरे में आ गयी और सोचा—'अभी इसी वक्त यह सब नहीं कहा जायेगा···पुष्पा को अलग से बुलाकर ही कहूँगी···एकदम ऐसी बात कह दूँ···तो बात बिगड़ जायेगी। पुष्पा की माँ अपनी बेइज्जती समझ लेंगी। ऐसे में नहीं होगा, अलग से पुष्पा को ही कहना पड़ेगा और यह रुपये उसी के हाथ में दे दूँगी।' अपनी विवशता पर पर्दा डालते हुए उसने अपने आपको आश्वासित कर लिया और रुपये आलमारी खोल ड्राइव में बन्द कर दिये।

लता की सहेली बिन्दु आयी हुई थी। कुछ देर वे बैठक में बैठी एक-दूसरे के गम बाँटती रही। फिर लता उसे एकान्त में ले जाने के इरादे से अपनी बड़ी भाभी के कमरे में आ पहुँची···लता का कमरा इन दिनों पुष्पा के पास था। भाभी का यह कमरा सब कमरों में कुछ बड़ा भी था और तीन-तीन अलमारियाँ भी थीं। एक ओर दीवान रखा था, जिस पर इन दिनों ढेर से कपड़े-लत्ते रखे रहते थे। पलँग पर एक ओर जगह बनाती हुई लता बोली—"बिन्दु, इधर बैठ जाओ।"

सोहागवती छिपी-छिपी-सी आ-जा रही थी। लता का सामना करना उसे दुश्वार हो रहा था। लड़की जितनी सीधी है, तेज भी उतनी ही है। नरेश-महेश को समझाना मुश्किल नहीं, मगर इसे और इसके बड़े भइया से कुछ कहना मुसीबत मोल लेना है। आलमारी की ओर मुँह किए वह

पीठ की ओर से लता की आवाज सुन चुकी थी। अकेले में सामना करना मुश्किल था, लेकिन अब···अब वह अकेली नही बिन्दु उसके साथ है, यह देख वह पलटकर एकाएक बोल उठी—"कौन बिन्दु···?"

"हां भाभी···मैं तो परसों ही दिल्ली आयी थी, आते ही मालूम हुआ कि मां जी···नहीं रही···!"

सोहाग विश्वास खींचती हुई बोली—"भगवान की इच्छा के आगे किसी का क्या जोर···"

कुछ क्षण चुप्पी छाई रही, फिर सोहाग ने ही पूछा—"अब कुछ दिन रहोगी यहां ?"

"नही आंटी, परसों चण्डीगढ़ जा रही हूँ···"

"बंगलौर से कब आयी हो ?"

"वहां से आये तो बहुत देर हो गयी है भाभी, चण्डीगढ़ में ही थी··· यहाँ कुछ काम था, इसीलिए आयी थी···यहां न आती तो मालूम ही न होता। लता ने कभी चिट्ठी भी नही लिखी। मैंने कई चिट्ठियां लिखी थी इसे···मगर इसने एक का भी जवाब नहीं दिया।"

"विनोद वहो है ?"

"हां।"

"ठीक है न ?"

"क्या मालूम···" उसने दबी जबान मे कहा तो लता ने कहा—"भाभी, बाहर कुछ लोग आये हुए हैं।"

"अच्छा मैं जा रही हूँ···और लता, बिन्दु को कुछ ठण्डा पिला दो··· नहीं तो चाय ही बनवा दूं···"

"नही भाभी—अभी कुछ नही चाहिए···आप···चलिए···"

भाभी के बाहर जाते ही बात लता ने शुरू की—"मैं तो समझती थी कि तुम बहुत खुश हो उसके साथ···लेकिन यह सुनकर तो बड़ी हैरानी हो रही है···कि विनोद ने तुझसे भी···धोखा किया है।"

"तुमसे भी···क्या मतलब ? क्या तुम्हें उसके बारे में कुछ मालूम था···?" बिन्दु ने हैरानी से पूछा तो लता ने ठण्डी सांस लेते हुए कहा—"जिस बात को मैं आज तक किसी के आगे नहीं कह सकी, वही बात मुझे

आज तुम्हारे ही आगे कहनी पड़ेगी। यह अगर जानती तो तुम्हें यह सब उसी वक्त बता देती जबकि तुम्हारे साथ उसके विवाह की बात चल पड़ी थी। मैंने तो उसे तुम्हारे लिए ही छोड़ दिया था। यह सोचकर कि मेरे आगाह करने की बात को तुम कहीं और ही कुछ न समझ बैठो।"

"क्या कह रही हो तुम?"

"ठीक कह रही हूँ बिन्दु! विनोद के साथ मेरी सगाई की बात पक्की हो चुकी थी और विवाह भी एक तरह से निश्चित हो चुका था। लेकिन तुमने यह बात कभी बताई ही नहीं थी कि कभी तुम्हारी सगाई भी हुई थी।"

"क्या बताती? उसने तो मेरे आगे के रास्ते भी एक तरह से बन्द कर दिए थे। खुद ही रिश्ता माँगा और खुद ही इन्कार कर दिया।"

"आखिर क्यों···ऐसी क्या बात थी?"

लता ने लम्बी गहरी साँस ली, फिर कुछ सोचते हुए कहा—"हमारे कोई दूर के रिश्तेदार हैं···रिश्तेदारी से ज्यादा दोस्ती ही कहना चाहिए। भइया उन्हें अच्छी तरह से जानते थे, और उन्हें विनोद की माँ भी जानती थी। बस एक बार हम लोग किसी शादी पर इकट्ठे हुए थे। विनोद की माँ ने मेरे बारे में उन लोगों से पूछताछ की; और एक दिन लड़के को लेकर हमारे यहाँ आ पहुँची।"

बिन्दु एकदम से बोल उठी—"तुम···कहीं उस मिसेज सहगल की बात तो नहीं कह रही! वही जिसके पति किसी कन्सट्रक्शन कम्पनी के ठेकेदार हैं?"

"हाँ···हाँ, तो क्या तुम भी जानती हो?"

बिन्दु ने आँखें जोर से भींच लीं, एक लम्बी साँस लेती हुई बोली—"वह तो मेरी मौसी की भी सहेली थी, मौसी के यहाँ पार्टी में आयी थी। वहाँ उसने मुझे देखा तो चट से मौसी से मेरे रिश्ते की बात चला दी। मुझे तो लता वह छोड़ती ही नहीं थी। कभी मेरे कपड़ों को छूती और कभी मेरे गालों को थपथपा देती। जितनी देर बैठी रही, मुझे बगल में ही बिठाये रखा।"

"ठीक वैसे ही जैसे मेरे साथ किया था।"

बिन्दु बरबस ही हँस पड़ी—"तो हम दोनों ही उसकी लपेट में आ चुकी हैं···फर्क सिर्फ इतना ही रहा कि तुम खाई में गिरते-गिरते बच गयी और मैं कुएँ में गिरकर निकल आयी हूँ।" फिर संजीदा होकर बोली—"हम तो बुरी तरह से उसके शिकंजे में आ गये हैं लता! मम्मी-पापा ने अपनी हैसियत से बढ़कर खर्च किया था, जेवर-कपड़े, चाँदी के बर्तन, घर का तमाम फर्नीचर तो एक ओर रहा, पापा ने अपनी फिएट कार भी बेच दी थी। विनोद की माँग थी कि मुझे एम्बेसेडर गाड़ी चाहिए।"

"ओह···सच···?"

"हाँ, लता···जब पापा ने गाड़ी बेची थी तो मैं सारा दिन रोती रही थी···मैंने मम्मी से कहा भी था कि जो आदमी अभी से इतनी माँग कर रहा है, वह आगे मेरे साथ क्या करेगा?"

"तो तुमने इन्कार क्यों नहीं कर दिया था?"

"कैसे करती···सब जानते थे कि हम दोनों एक-दूसरे के साथ खूब घूम-फिर चुके हैं। पापा रिटायर्ड हो चुके थे और मम्मी लोगों से डरने लगी थीं कि कहीं मुझ पर उँगलियाँ न उठाई जाएँ।"

"माँग तो उसने हमारे यहाँ भी की थी। हम उसकी माँग पूरी नहीं कर सके थे, इसीलिए विनोद और उसकी माँ शादी के लिए टालमटोल करते रहे। पूरा साल-भर यह किस्सा चलता रहा था। बाद को उसकी माँ कहने लगी थीं—फैक्टरी में नुकसान हो गया है, उसे फिर से चलाने के लिए हिम्मत चाहिए, पैसा चाहिए···मगर भइया उनकी बातों में नहीं आये, उन्होंने बँगलौर जाकर पता किया था तो मालूम हुआ था कि विनोद की फैक्टरी है ही नहीं, वह तो वहाँ एक पार्ट टाइम इंजीनियर की हैसियत से काम करता है। और मुझे तो भइया ने, माँ ने उसके साथ कहीं आने-जाने की छूट भी नहीं दे रखी थी। भइया इन मामलों में बड़े सख्त हैं बिन्दु···!"

"तो फिर रिश्ता तुम लोगों ने तोड़ा था कि उन्होंने?"

"रिश्ता तोड़ने की बात हमारी तरफ से नहीं हुई थी। विनोद की माँ ने मिसेज सहगल की मार्फत ही कहला दिया था कि विनोद लता के साथ शादी नहीं करना चाहता, क्योंकि लता किसी और लड़के के साथ

प्यार करती है···"

"ओफ···कितनी खराब बात की उन्होंने !"

"तभी तो मैं कह रही थी कि उसने तो मेरे आगे का रास्ता ही बन्द कर दिया था। जब घरवालों ने सुना था तो हक्के-बक्के रह गये थे··· और तो और ··माँ भी पूछा करती थी—कोई बात है लता तो सच-सच बता दो···हम तुम्हारा रिश्ता वहीं कर देते हैं।"

बातें लम्बी होती जा रही थी और वक्त कम देख बिन्दु ने कहा—"अब मैं चलती हूँ लता ! अगले हफ्ते तक तो फिर मुझे आना है यहाँ। केस कोर्ट में चला गया है···।"

"केस···कौन-सा ?"

"अरी···बताया तो है कि मैं विनोद को छोड़ आयी हूँ। यह काम अरुण अकल ने अपने जिम्मे ले रखा है। कह रहे थे, तलाक जल्दी ही मिल जायेगा।"

लता हक्की-बक्की-सी रह गयी···उससे कुछ पूछते नहीं बना, सिर्फ उसे देखती ही रह गयी···बिन्दु उठते हुए बोली—"उसके साथ यह तीन बरस जैसे मैंने गुजारे हैं वह मैं ही जानती हूँ लता ! कोई और लड़की होती तो उस आदमी के साथ एक महीना भी न रह सकती···न कुछ काम न धाम, बस ड्रग लिए और बेहोश बने रहे।"

"क्या कहा···वह ड्रग का आदी है ?"

"और क्या···शुरू-शुरू में कुछ समझ नहीं आयी थी···पूछती तो बहाना लगा जाता—तबीयत ठीक नहीं, इसीलिए छुट्टी ले ली है।"

"और उसकी माँ, वह भी कुछ नहीं कहती थी ?"

"अब क्या बताऊँ तुमसे ? पहले तो वह छिपाती रही, चुपचाप उसे पैसे पकड़ा देती थी, फिर जब वह भी तंग आ गयी तो उसने मुझसे माँगने शुरू कर दिये। मेरे पास जो था, वह भी खत्म हो गया। नौकरी की पूरी तनखाह झपट लेता, देने से इन्कार करती तो मार-पीट पर उतर आता। अब तुम ही बताओ···ऐसे आदमी के साथ कौन रह सकता है ?"

"तुम इतने दिन तक चुपचाप सहती रही···?"

"बस यही गलती की, सोचा था शायद वह सँभल जाये। कभी-कभी

ठीक भी हो जाता था। काम पर जाता, मगर पाँच-सात दिन बाद फिर वही हालत, वही बेहोशी और वही मार-पीट।"

"आजकल उसकी माँ वहीं है ?"

"पता नहीं, मैं जब आयी थी तब तो वहीं थी। यहाँ जो कोठी थी उसको सुना है वह बेच रही है और उसके बदले कोई छोटा मकान देख रही है। पैसा तो था उसके पास···खर्च भी करती थी, लेकिन अब वह भी तंग आ गयी थी···"

"बुरे कामों का बुरा ही नतीजा होता है···लड़के को बिगाड़ा भी तो उसी ने ही होगा···"

"और क्या···पति से तो उसकी कभी बनी ही नहीं थी···लड़के को लेकर अलग हो गयी थी···उसकी अपनी माँ की कोठी थी जिसमें रहती थी। एक ही लड़का था···वह भी ऐसा निकला···" बिन्दु जाते-जाते भी रुक गयी थी।

एकाएक लता उठती हुई बोली—"तलाक के बाद, कुछ सोचा है··· क्या करोगी ?"

"करूँगी क्या, अभी तक तो नौकरी करने का विचार है···बाद को क्या होगा, यह देखा जायेगा···शुक्र है कि आजाद हूँ ··कोई बन्दिश पाल लेती तो बड़ी मुश्किल हो जाती···न छोड़ सकती और न ही सँभाल सकती।"

"क्या मतलब ?"

"मतलब यही कि तुम्हें मौसी बनने का अवसर नहीं दिया और··· शायद यही जिन्दगी जीती रहती तो तुम मेरी ओर से कभी मौसी न बनाई जातीं।"

"यानी ?"

"क्या करोगी पूछ कर ? नशीली चीजें आदमी को हर तरह से बर्बाद कर देती हैं लता ! वह हर तरह से नाकामयाब हो चुका है।"

लता से आगे कुछ पूछा नहीं गया। बिन्दु ही बोली—"मैंने अपने बारे मे सब कुछ बता दिया है। मगर तुम्हारे बारे में कुछ नहीं पूछा। वह पिछली बात तो खत्म हो चुकी थी। तुम जान भी चुकी थी कि

विनोद ने शादी कर ली है…फिर क्या बात हुई कि तुमने अभी तक अपने लिए कुछ नही सोचा…?"

"क्या सोचना है ?"

"क्यो…ऐसी भी क्या बात है ! अगर तलाकशुदा लडकी अपने लिए फिर से गृहस्थी बसाने की सोच सकती है, तो तुम नही सोच सकतीं ? तुम तो कुंआरी ही हो, और फिर कमी भी किस बात की है ?" फिर धीरे से बोली—"मैं अब की बार आऊँगी तो तुम्हारी भाभी से बात करूँगी… एक लड़का है…बहुत अच्छा है। है तो आर्मी आफिसर…अभी तक शादी नही की उसने…"

"प्लीज…बिन्दु…रहने दो बस !"

"क्यों…कोई ख्याल में है क्या ?"

"मेरी छोड़ो अपनी बताओ। तुम्हें वह जँच गया है तो शादी कर लेना उसी के साथ…"

बिन्दु दबी जबां में हँस दी—"मेरी अपनी पसन्द अपने लिए नहीं तुम्हारे लिए है, और हाँ इस बात का जरूर ख्याल रखूंगी कि तुम्हारे साथ आने वाली चीज मेरे पल्ले न पड़ जाये…।"

यह कहते हुए बिन्दु जाने लगी तो लता ने कहा—"बातों में मैं पूछना ही भूल गयी, तुम्हें प्यास ही नही लगी ?"

"मुझे प्यास होती तो पी लेती…अच्छा अब मैं चलूंगी लता ! फिर मिलूंगी…आठ-दस रोज तक तो आना ही है।"

सुनीता इतनी देर से बाहर खड़ी उसी का इन्तजार कर रही थी। जैसे ही उसने बिन्दु को बाहर जाते हुए देखा तो जल्दी से भीतर आती हुई बोली—"दीदी…आपको पापा पूछ रहे थे…"

"अच्छा ? कहाँ हैं वह ?"

"अब तो बाहर शामियाने में खड़े हैं !"

"लोग आ गये हैं क्या ?"

"हाँ, काफी लोग आ गये हैं, बेजी…पुष्पा चाची और उनकी मम्मी-पापा सब बाहर बैठे हैं।"

"और पण्डित जी ?"

"वह बस आने ही वाले हैं। मम्मी माँ जी की तस्वीर ले गयी हैं...और बाकी चीजें भी रख दी गयी हैं।"

"अच्छा..."

"और हाँ...उमा चाची अभी नीचे नहीं आयी...उन्हें बुला लाऊँ?"

"नहीं, रहने दो, उनकी तबीयत ठीक हुई तो खुद ही आ जायेंगी...और हाँ...बड़ी भाभी वहीं हैं?" लता को एकाएक याद आ गयी वह बात जिसके लिए उसने रो-रोकर सिर पर आसमान उठा लिया था और बड़ी भाभी ने वह बात अपने जिम्मे लेते हुए बड़ी दृढ़ता से कहा था कि मैं नीचे जाकर बात करती हूँ। तो क्या बात हो गयी? उसने अपने आपसे पूछा...फिर जल्दी ही बोली—"तुमने देखा है पुष्पा की मम्मी को, कहाँ हैं वह?"

"बाहर बैठी हैं...बेजी भी वहीं हैं, बेजी की दोनों बहुएँ भी और...और भी बहुत-सी औरतें बैठी हैं।"

"तो भाभी ने बात की नहीं होगी।"

"कौन-सी बात...?"

"कुछ नहीं...यों ही कुछ बात थी..." लता ने पीछा छुड़ाने की कोशिश में कहा...फिर तेजी से वहाँ से चल दी...सुनीता ठगी-सी उसी की ओर देखती रही, फिर माँ की आवाज सुन रसोई की ओर चल पड़ी।

"तुम यहाँ खड़ी क्या कर रही हो...तुम्हें थालियाँ लाने को भेजा था न?"

"लेने तो आयी थी!"

सोहागवती बड़बड़ाती हुई थालियाँ निकाल रही थी। हवन सामग्री के लिए जो सामान चाहिए था वह अभी भी इकट्ठा नहीं हुआ था। और इधर पण्डित जी उतावली में थे, उनको सोमेश ने कह रखा था कि पाँच बजे तक सब खत्म कर देना है। लोग जो बाहर से आये हैं उन्हें लौटने के लिए बस पकड़नी है।

पण्डित जी ने मन्त्र पढ़ने शुरू कर दिये थे। सोहागवती और पुष्पा

पास-पास बैठी थीं । सोमेश, नरेश और महेश सामने की ओर बैठे थे । पुष्पा की मम्मी ने चारो ओर नजर घुमाते हुए देखा तो पाया उमा नही हैं और लता भी दिखाई नही दे रही । उधर पण्डित जी के पास सुरेश और मंजू भी बैठे थे ।

सुरेश को इशारे से बुला कर धनवन्ती ने कहा—"जाओ, उमा आंटी को बुला लाओ, कहो हवन शुरू हो गया है ।"

मन्त्रोच्चारण के साथ-साथ सामग्री डालती हुई पुष्पा की नजरें आने वालो पर टिकी थी । उसे अभी भी आशा बँधी हुई थी कि चाचा जी शायद आ जायें । उमा को आते हुए देख उसने खिसकते हुए उसके लिए जगह बना दी…उमा बैठ गई तो धीरे से पूछा—"चाचा जी का कोई तार भी नही आया था ?"

"मुझे तो मालूम नही ।" उसने पीछा छुड़ाने की कोशिश मे कह दिया ।

पण्डित जी ने सामग्री उमा के हाथ में देते हुए कहा—"स्वाहा…के साथ-साथ आप इसे हवन कुण्ड में डाल दें…" …सोमेश घी डाल रहे थे और आहुतियाँ सभी ने डाल दी थीं…।

"लता कहाँ है…उसे भी बुला लो ।" सोमेश ने सोहागवती से कहा तो सुनीता बोली—"दीदी यही पीछे बैठी हैं ।"

बेजी एक ओर बैठी थी, सुना तो एकदम बोलीं—"लड़की से हवन…करवाओगे…?"

जवाब पण्डित जी ने दिया—"लड़की अलग होती है क्या ? बुलाइए उसे भी । हवन तो शुद्धि के लिए होता है माता जी…! उसमें लड़के हों या लड़कियाँ, फर्क नही समझना चाहिए ।"

लता पास में इसलिए नही आ रही थी कि कही सबके सामने ही वह रो न दे । बेजी की बात सुनी तो एकदम उठकर वहाँ जा बैठी… उसने अपने मे शक्ति बटोर ली थी और अपने आप पर काबू पा लिया था । जब तक हवन होता रहा, वह शान्त भाव से बैठी रही ।

हवन की समाप्ति पर पगड़ी की रस्म होती थी और उसी के साथ उठाला भी । परन्तु पगड़ी की रस्म से पहले पण्डित जी उठ कर स्टेज पर

खड़े हो गये और हाथ जोड़ विनीत स्वर में बोले—"भाइयो और बहनो···अभी-अभी मुझसे कहा गया है कि मैं उस पवित्र आत्मा के सम्बन्ध मे कुछ कहूँ। उनके विषय में मैं कुछ अधिक तो नही जानता, लेकिन इतना जरूर जानता हूँ कि वह एक उच्च विचारों वाली महिला थी। हमारे यहाँ समाज-मन्दिर मे वह आया करती थीं। हर रविवार के दिन वह वहाँ अवश्य ही आती थी। उनके विषय में सुना जाता था कि वह गुप्त दान में अधिक विश्वास रखती हैं। आर्य-समाज के मन्दिर में उनका अटूट विश्वास था, अथक लगन थी। उन्होने समाज-मन्दिर में पढ़ने वाले गरीब बच्चों के लिए बहुत कुछ दिया है, लेकिन जब भी वह कुछ देती थी या गरीब बच्चो को खिलाती थी, तब किसी के आगे प्रकट नही किया करती थी। समाज मे आने वाली सभी महिलाएँ उनके इस गुप्त दान से परिचित हैं। उनके रहन-सहन में जितनी सादगी थी, विचार उतने ही उच्चकोटि के थे। पुराने रीति-रिवाजों के लिए उनके मन में बहुत क्षोभ था। वह कहा करती थीं कि लोग रीति-रिवाजों की आड ले अपनी शान-शौकत का दिखावा करते हैं। यह दिखावा उन्हें बिलकुल पसन्द नही था। जिस तरह लोग दहेज के विरुद्ध आवाज उठाने लगे है, उसी तरह से उनकी आवाज मृत्युशोक पर होने वाले आडम्बरों के प्रति भी उठा करती थी। वह कहा करती थीं कि लोग शोक-सन्तप्त परिवार वालों का दु:ख बाँटते नही, उन्हें और अधिक कष्ट झेलने के लिए मजबूर करते हैं। और यह किन्ही अर्थों में सत्य ही है।"

पण्डित जी थोडा रुके और घडी देख फिर कहने लगे—"जमाना बदल गया है मगर जमाने के साथ हमारी धारणाएँ नही बदली। जिन कारणो से रीति-रिवाज बनाये गये थे, वह कारण भूलकर, उनकी उपयोगिता भूलकर हम आज उनकी आड़ मे एक-दूसरे के सहायक न बनकर एक-दूसरे के लिए बोझ बनते जा रहे हैं। दूसरे की कठिनाइयाँ न समझते हुए अपनी सुविधाओ को महत्त्व देने लगे हैं।

"रीति-रिवाज क्या थे इनके कारण तो कोई नही समझता। एक जमाना था जब मृत्यु के समय शोक-सन्तप्त परिवार वालो के लिए आस-पास के लोग यह सोचकर उन लोगों के लिए खाने का प्रबन्ध किया करते

थे कि उस घर में इस दु:ख की घड़ी में चूल्हा नहीं जलाया गया, बच्चे भूखे हैं, घरवालों को फुर्सत नहीं, शोक में डूबे हुए परिवार की किसी को सुध-बुध नहीं। इसीलिए आस-पड़ोस वाले उनके बच्चों को सँभाल लेते थे और साधारण से भोजन की व्यवस्था की जाती थी। फिर धीरे-धीरे यह व्यवस्था सगे-सम्बन्धियों के कन्धों पर आ पहुँची और होते-न-होते यह व्यवस्था बोझ समझ कर समधियों के कन्धों पर डाल दी गयी। जैसे विवाह के समय लड़की वालों की ओर से लड़के वालों को भोजन आदि खिलाया जाना एक जरूरी रिवाज समझा जाता है, उसी तरह लड़के वालों के घर मृत्यु-शोक पर भी भोजन खिलाने की व्यवस्था लड़की के माँ-बाप के लिए एक आवश्यक रस्म समझी जाती है। इस रस्म के अनुसार केवल भोजन ही नहीं, कपड़े-लत्ते और रुपये देना भी जरूरी समझा जाता है। यह सब इसलिए नहीं कि उन लोगों की दशा इतनी दयनीय समझी जाती है कि रुपयों-पैसों की सहायता देना आवश्यक हो जाता है, नहीं, यह आवश्यकता···आवश्यकता नहीं एक रीति-रिवाज है, जिसमें देने-लेने वालों की औकात का अनुमान लगाया जाता है और उस अनुमान के साथ-साथ उसी अनुपात में उनसे आशाएँ की जाती हैं। सोचा जाए तो यह कितनी बड़ी शरम की बात है···।"

पण्डित जी बोलते चले जाने के मूड में थे और उधर सोमेश घड़ी देखे जा रहे थे। आखिरकार उनसे रहा नहीं गया, वह पण्डित जी के पास आते हुए धीरे से बोले—"जो बात जरूरी कहनी है वही कहिए पण्डित जी, वक्त कम रह गया है।"

पण्डित जी ने मुस्कुराते हुए कहा—"मुझे अफसोस है कि मैंने आपका समय कुछ ज्यादा ही ले लिया है।" पण्डित जी ने हाथ जोड़ते हुए शोक-सभा में सम्मिलित होने वाले जन-समूह पर चारों ओर नजर डालते हुए कहा—"अब पगड़ी की रस्म होने वाली है, इसलिए मैं आप सबसे यह निवेदन करना चाहूँगा कि कृपया इस अवसर पर कोई सगे-सम्बन्धी या मित्रगण पगड़ी बाँधने के समय रुपए-पैसे आदि देने का कष्ट न करें। इस परिवार की ओर से ही मुझे यह सन्देश देने को कहा गया है।"

यह कहकर पण्डित जी स्टेज पर से उतर गये। पुष्पा के पापा

बालकृष्ण जी ने आगे बढ़कर नरेश और महेश के हाथ में पगड़ियाँ दे दी। मुन्नी की माँ ने उनके पल्लू पर केसर छिड़क दिया और रुपयों के लिफाफे छिपा लिए गये। भीड़ छँटने लगी थी और सोमेश, नरेश, महेश पगड़ियाँ बाँधे कतार लगा खड़े हो गये थे। पुष्पा थी, सोहागवती थी, लेकिन उमा नहीं थी। वह कब किस समय उठकर चली गयी थी, किसी को मालूम नहीं हुआ।

हाथ जोड़ लोग विदाई लेते हुए करुणा-भाव प्रदर्शित करते हुए आगे-आगे बढ़े जा रहे थे और पास-पड़ोस, गली-मोहल्लेवालियाँ एक ओर झुण्ड बनाये परस्पर बतिया रही थी। सुबह के भोज में वह भी शामिल थी। उधर बेजी की बहुएँ बेजी के साथ खड़ी घरवालों का इन्तजार कर रही थी। कृष्ण-बलवीर आये तो वह बोली—"अब हमें भी चलना चाहिए···देर हो गयी तो बस नहीं मिलेगी।"

"क्या अभी जाओगी···?"

"हाँ···माँ, अब और रुकना ठीक नही। दो दिन हो गये है···आये हुए···"

"ऐसे कैसे जायेगा, कुछ चाय-वाय तो पी लेता।" बेजी ने इधर-उधर देखते हुए कहा।

"नहीं माँ···देर हो जायेगी तो बस नही मिलेगी। करनाल पहुँचने में दो-ढाई घण्टे लग जायेंगे···"

"और आप···आप भी तो जायेंगी साथ में?" सुनीता ने बेजी को टटोला तो बेजी तुनककर बोलीं—"तुम्हें मेरे जाने की जल्दी पड़ी है; क्यों?"

"मुझे क्या जल्दी है···आप ही तो सुबह कह रही थी कि तेरहवीं के बाद कोई नही रुकेगा···"

पुष्पा की माँ धनवन्ती भी वही खड़ी थी, सुनीता की बात मे उन्होने भी हामी भरते हुए कहा—"सुनीता ठीक कहती है, क्रिया-कर्म के बाद सभी अपने-अपने ठिकाने लग जाते हैं। फिर आप तो इस घर की लड़की ही हैं न···बहुएँ तो रुकेंगी ही, लेकिन लड़की मायके में नही रहती।"

बेजी का मुँह लटक आया। यह बात उन्होने खुद ही सुबह सबको

सुनाते हुए कही थी।

बेजी से भी रहा नहीं गया, बोली—"आप भी रात की गाड़ी से अमृतसर जा रही हैं कि अभी रुकेंगी ?"

"मेरा काम तो खत्म हो गया है बेजी, मैं तो जाऊँगी ही···लड़की के घर डेरा डाल कर नहीं बैठूँगी···इत्मीनान रखिए।"

"चलो माँ, अब चलें···" कृष्ण ने बैग कन्धे से लटकाते हुए कहा।

बेजी बोली—"मैं करनाल नहीं, बलवीर के साथ पहाड़गंज जाऊँगी···तीन-चार दिन वहीं रहूँगी। सतारहवीं को यतीमों को खाना खिलाना है। सोहाग़वती कह रही थी, सो उस दिन तो मुझे यहाँ आना ही है।"

बलवीर आगे आते हुए बोला—"आपके कपड़े-लत्ते कहाँ हैं···जल्दी करो···मुझे भी देर हो रही है।"

पुष्पा भी वहीं आ गई थी, बलवीर के साथ बेजी के जाने की बात सुनी तो वह चट से बोल उठी—"बलवीर···तुम्हारी दुकान सदर बाजार में है ? सुना है, क्राकरी रखते हो ?"

"जी, मामी जी···"

"तुम्हारी दुकान से कुछ चीजें देखनी हैं, कोई साथ में हो तो कल ही आ जाऊँ।"

"जरूर आइए मामी जी !"

"लेकिन अकेली तो मैं आ नहीं सकूँगी···अगर मैं तुम्हारे घर आ जाऊँ सुबह तो तुम्हारे साथ ही चली जाऊँ···।"

"जैसी आपकी मर्जी ··वैसे मैं सुबह साढ़े नौ बजे तक निकल जाता हूँ। आप अगर जल्दी आ जायें तो ठीक है···वरना मैं आपको दुकान का नम्बर, पता लिख देता हूँ···आप सीधे ही वहीं आ जायें।"

बेजी ने माथे पर तेवर डालते हुए पूछा—"अमृतसर ले जाओगी ?"

पुष्पा ने अनसुना कर दिया और माँ से पूछा—"मम्मी, आपके लिए भी कुछ चाहिए···यही डिनर सैट या कुछ और जैसे कि फुल प्लेट्स या टी-सैट। सुना है बोन चाइना की बहुत अच्छी वैराइटी है इनके पास···"

"एजेन्सी ले रखी है क्या···किसकी एजेन्सी है···?"

"बंगाल पॉटरी की है और हितकारी की भी है···"

"अमृतसर में चीनी के बर्तन नही मिलते क्या जो इतनी दूर से चीनी के बर्तन उठा ले जाओगी ? रास्ते में टूटने का भी डर लगा रहेगा।"

"आप घबराइए नही बेजी, मैं बड़े आराम से ले जाऊँगी···" कहने के साथ ही पुष्पा ने बलवीर से कहा—"अरे बलवीर ! तुम्हें देर हो रही है तो तुम चलो, बेजी को सुबह मैं लेती आऊँगी ··इन्हें तुम्हारे घर छोड़ कर मैं तुम्हारे साथ दुकान पर चली जाऊँगी ।"

धनवन्ती ने कहा—"तुम कैसे ले जाओगी उन्हें···वह तो अभी जाने वाली हैं ।"

"अभी कोई खास बात है ?"

"खास बात मुझे नही इन्हें मालूम है । यहाँ रात रहना चाहती हैं कि नहीं—यह तो यही बता सकती हैं ।"

बेजी जाने न जाने की स्थिति में खड़ी कभी पुष्पा को देखती और कभी बलवीर को।

"बिखरा सामान भी सहेजा नही गया था और इधर बलवीर जाने की जल्दी में था, सो बेजी की दयनीय-सी दशा देख सोहागवती पास आते हुए बोली—"तुम लोग क्या सोच रहे हो, इस वक्त बेजी का जाना नही हो सकेगा ।" दो-तीन दिन बाद ही जा सकती हैं। क्यो बेजी, अगर आप को कोई ऐतराज न हो तो यही रुक जाइए न···?"

"ऐतराज की बात नहीं है सोहाग···अब बलवीर आया हुआ है सो सोचा इसके यहाँ तीन-चार दिन रह लूँगी ।"

बलवीर चट से बोल उठा—"मेरे पास तो माँ फिर भी आ सकती हो, अब इस वक्त आपकी यहाँ जरूरत है तो दीदी के पास रह जाओ···मैं फिर कल आकर ले जाऊँगा ।"

सुनीता ने देखा तो माँ को बुलाते हुए पूछा—"मम्मी···जरा इधर आइए तो···"

"क्या बात है ?"

"चीनी कहाँ रखी है ?"

सोहागवती झल्लाती हुई आई और गुस्से से बोली—"वह सामने क्या रखा है···उसी डिब्बे मे तो है···"

सुनीता ने धीरे से कहा—"वह तो मुझे मालूम ही है, मैं आपको इस-लिए बुला रही थी कि आप बेजी को क्यों रोक रही हैं, उन्हें जाने दीजिए। पापा और नरेश चाचा भी कह रहे थे कि अब बलबीर अंकल आये हुए हैं, उनके साथ बेजी चली जायें। अगर आज बेजी नहीं गईं तो बस देख लेना यहीं टिकी रहेंगी। न बलबीर अंकल आयेंगे लेने को और न ही करनाल से कृष्ण अंकल आयेंगे।"

सोहागवती सोच में पड़ गई। सुनीता की बात सच ही है। दोनों लड़के माँ को साथ रखने में घबराते हैं, खास करके बलबीर। बलबीर की बीवी शान्ता इतनी देर से खड़ी है, मगर क्या मजाल कि एक बार भी उसने सास का हाथ पकड़ा हो या कहा हो कि माँ जी दिखाइए सामान कहाँ रखा है। चलिए, मैं बाँध देती हूँ। या इतना भी कहा हो कि माँ जी, आप चलिए हमारे, कुछ दिन वहाँ चलकर रहिए। अब आप आई हुई हैं तो कुछ दिन रहिए न···! इससे पहले भी सोहाग देख रही थी कि बेजी को चलने के लिए जब बलबीर कह रहा था, तो उसकी बहू चेहरा दूसरी ओर किये खड़ी थी···पलटकर देखा तक नहीं था। और इधर सुनीता भी ठीक कह रही थी, बेजी आज यहाँ रह गईं···तो बस यहीं टिकी रहेंगी। लेकिन अब···अब वह बलबीर से क्या कहे···सोहाग को अपने आप पर भी गुस्सा हो आया और झल्लाहट पुष्पा पर भी···जो अपने मतलब के लिए बेजी को कह रही थी कि मैं ले जाऊँगी आपको। अपने को तसल्ली देने के विचार से उसने सुनीता को कहा—"आज रात की ही बात है। सुबह तुम्हारी चाची ने बलबीर की दुकान पर जाना है, वह कह रही थी कि बेजी को मैं साथ ले आऊँगी।"

"कौन···पुष्पा चाची···ले जा चुकीं वह···"

मम्मी को वहीं छोड़ सुनीता चाय की ट्रे उठाये बरामदे में आ गयी। देखा बरामदे में कोई नहीं सिवाय बेजी के। बेजी कुर्सी पर बैठी थकान से ऊँघ रही थीं। सुनीता को देखा तो पूछा—"चाय लाई हो सुनीता?"

"जी हाँ···आप पियेंगी···कि दूध ले आऊँ?"

"नहीं, दूध नहीं···चाय में जरा दूध ज्यादा डाल देना···"

मेज पर चाय की ट्रे रखते हुए उसने पूछा—"चाचा जी वगैरा कहाँ

है।

"मुझे तो पता नहीं···हाँ वह पुष्पा के पिता जी हैं न, उनके साथ खड़े थे···बैठक में नहीं हैं ?"

"पता नहीं, अभी जाकर देखती हूँ।" सुनीता ने प्याला बेजी के हाथ में थमाते हुए कहा—"बिस्कुट चाहिए तो ले आऊँ ?"

"नहीं बेटी···नहीं···आज देर से खाना खाया है, भूख नहीं रही।" फिर धीरे से पूछा—"सुनीता···यह लता किससे बातें कर रही थी··· कौन लड़का आया था ?"

सुनीता झुंझला उठी···बस यही बात बेजी की बुरी है, हर बात को पूछती हैं···मन ही मन खीजते हुए उसने प्रत्यक्ष में कहा—"आपको कैसे मालूम हो गया कि दीदी किसी लड़के से बातें कर रही थी···?"

"अरी मुझे क्या दिखाई नहीं देता ! अभी भी तो बाहर खड़ी है···"

जवाब देने की अपेक्षा सुनीता ड्राइंगरूम में आ पहुँची। खिड़की में से देखा···लता दीदी नरेश चाचा और महेश चाचा से अजय का परिचय करवा रही थी—"भइया···अजय उसी फैक्टरी में काम करते हैं जहाँ मैं करती हूँ···"

सुनीता खिड़की की ओर से लौट आयी, कोई देख लेगा तो क्या सोचेगा, छिप-छिप कर बातें सुनती है···फिर याद आया उसे, सुबह जो फोन आया था, वह शायद उन्हीं अजय महाशय का ही था···नाम तो बताया नहीं था···कहा था लता जी को बुला दीजिए, कहिए फैक्टरी से फोन आया है। और दीदी···दीदी भी हाँ-हूँ में बातें करती रही थी···तो यह बात है ! दीदी से पूछूँगी···जरूर पूछूँगी···एक शरारतपूर्ण मुस्कुराहट उसके होंठों पर फैल गयी, जिसे बेजी ने भी देख लिया था और पूछने लगी थी—"हँसी किस बात पर आ रही है तुम्हें···?"

"बस यूँ ही बेजी···हर बात पूछी नहीं जाती।"

मन ही मन बेजी बुदबुदाती रही—"कैसी दबंग छोकरी है, अभी से यह हाल है तो न जाने बड़ी होगी तो क्या करेगी !"

ज्यों-ज्यों समय बीतता जा रहा था, सोहाग की आकुलता बढ़ती जा रही थी। बार-बार लिफाफा बाहर निकालती और फिर हिफाजत के

लिए उसे आलमारी में रख देती। इन रुपयों को लेकर मैंने जान आफत में डाल दी है। कहने वाले सब किनारे हो गये हैं, फंस गयी हूँ तो मैं ही। उसे अपने आप पर रोष आ रहा था। क्यों ले लिए थे मैंने? बड़े जोश से बड़े दावे से कह आयी थी—लाइए, यह काम मैं करूँगी, मैं कह दूंगी—यह खर्च हम अपने से करेंगे।···यह खर्च अपने से करेंगे, कैसी बेतुकी बात है! सुबह से ही यह सब चलता रहा, तब तक सब मुंह सिए बैठे रहे। सामान आता रहा, हलवाइयों को पैसे दिए गये, तब तक तो कुछ नहीं कहा, अब जब सब निबट गया है तो किस मुंह से जाकर कहूँगी···यह लीजिए यह खर्च जो आपने भोजन खिलाने में किया है? पुष्पा को भी किस मुंह से कहूँगी? नहीं ··यह मुझसे नहीं हो सकेगा? पुष्पा की मम्मी को समझाऊँगी भी तो कैसे? क्या कहूँगी कि माँ जी की अन्तिम इच्छा थी कि खर्च किसी से नहीं करवाना? यही बताना था तो पहले से ही क्यों नहीं बता दिया गया? उसे लता पर भी क्रोध हो आया, जिसने पहले से वह चिट्ठी लाकर नहीं दी···दी होती तो सब सहज हो जाता। उसने लिफाफा निकाला, उसे दोहरी तह लगाकर ब्लाउज के भीतर छिपा लिया, सोचा···पुष्पा से अलग से बात करूँगी···यह सोच वह कमरे से बाहर आयी। फिर देखा सुनीता बरामदे में खड़ी लता से बातें कर रही है। सुनीता को बुलाते हुए उसने पूछा—"चाची कहाँ है तुम्हारी?"

"कौन-सी चाची? उमा या पुष्पा चाची···?"

"दोनों ही।"

जवाब लता ने दिया—"उमा भाभी जी की तो तबीयत ठीक नहीं है और पुष्पा भाभी और उनकी मम्मी उनसे मिलने ऊपर गयी है।"

सोहागवती सब कुछ भूल परेशान-सी सीढियों की ओर गयी और जल्दी से ऊपर आ पहुँची···देखा पुष्पा की मम्मी उमा के सिरहाने बैठी बड़े प्यार से उसके माथे को सहला रही हैं। पुष्पा ने जेठानी को आते हुए देखा तो उमा से बोली—"देखो दीदी भी आ गयी हैं···अब तो···अब तो···"

सोहागवती ने घबराते हुए पूछा—"क्या बात है···तबीयत ठीक है न···"

पुष्पा ने होंठों पर उँगली रखते हुए मम्मी और उमा को खामोश रहने का इशारा किया, फिर जल्दी से बोली—"दीदी, आप इसके पास रहिए ···मैं अभी इसके लिए दवाई लेकर आती हूँ···"

पुष्पा तेजी से नीचे उतर आई। रसोई में गयी। इधर-उधर देखा। कुछ मिला नहीं। बाहर आयी तो लता से पूछा—"पूजा का सामान स्टोर में रखा है न···!"

"क्यों, क्या बात है ?" लता ने पुष्पा को तेजी से इधर-उधर घूमते देख आश्चर्य से पूछा।

पुष्पा बोली—"घबराने की कोई बात नहीं···जरा स्टोर की चाबी दो मुझे, कुछ जरूरी चीज निकालनी है।"

लता रसोई में गयी···वहाँ से आलमारी में रखी स्टोर की चाबी निकाल स्टोर खोल दिया, फिर पूछा—"कौन-सी जरूरी चीज निकालनी है भाभी, कुछ बताओ भी···?"

"अभी बताती हूँ···" स्टोर में रखे पूजा के सामान में से इधर-उधर ढूँढ़ती हुई वह एकाएक खुशी से दबी जबाँ में बोल उठी—"शुक्र है मिल गया है।"

"क्या···क्या मिल गया है ?"

"पूछो मत···बस भागी चली आओ मेरे साथ-साथ···" पुष्पा ने साड़ी के छोर में कोई चीज जल्दी से उठाकर छिपा ली थी। स्टोर का दरवाजा बन्द करने की भी फुर्सत नहीं थी। वह भागती-सी सीढ़ियाँ चढ़ती हुई ऊपर पहुँची, पीछे-पीछे लता भी थी।

पुष्पा ने उमा के पास आते हुए उसे पीठ के पीछे से उठाते हुए कहा, "अब चुपचाप से उठकर बैठ जाओ···उमा···और लो···यह आशीर्वाद, यह माँ जी ने तुम्हारे लिए दिया था···और कहा था···पुष्पा···उमा को कहना इसे सँभालकर रखेगी।" कहने के साथ ही उसने नारियल उसकी गोद में डाल दिया।

तभी लता एकदम से उमा के गले से लिपटती हुई बोली—"सच भाभी···माँ ने मुझसे भी यही कहा था।"

खुशी और आह्लाद से सोहागवती की आँखें छलछला आयीं। उमा

के तकिये पर बिखरी केशराशि को सहलाते हुए उसने उसका माथा चूम लिया, फिर जल्दी से लता से बोली—"जल्दी से अपने भइया को बुला लाओ···यह खुशखबरी उन्हें भी सुना दें···"

"कोई जरूरत नही दीदी···महेश को मालूम है, उसे तो डाक्टर ने परसों बता दिया था। यह दोनों छिपे रुस्तम निकले। इसने भी कहाँ बताना था! यह तो मम्मी ही हैं जो इसकी बीमारी को ताड़ गयी। पूछा तो इन्कार नही कर सकी। क्यो उमा···कैसी पकड़ी गयी हो।"

उमा के होंठों पर एक मीठी-सी मुस्कराहट तैर गयी और बड़ी-बड़ी कोमल आँखें पलको के भार से मुँद गयी। चेहरा जितना निस्तेज-सा हो रहा था उस पर ममता उतनी ही उमड़ आयी थी।

सोहागवती ने उसकी अशक्त उँगलियों को चूमते हुए कहा—"माँ जी की यही साध थी कि उमा की गोद हरी-भरी हो। सच उमा, यह उनका ही आशीर्वाद है। और देखना, यह आशीर्वाद हमेशा फलता-फूलता रहेगा।" कहने के साथ ही उसे लगा जैसे हवा मे एक सुगन्ध फैल गयी है और वातावरण शान्त और सहज हो उठा है। उसने एक लम्बी निश्चिन्तता से भरी हुई साँस ली और अपने ब्लाउज के भीतर छिपाया हुआ लिफाफा निकाला और उसे पुष्पा की मम्मी को देते हुए कहा—"आप उमा की माँ हैं, इसे उमा के सिर पर से वार कर गरीबों में बाँट देना।"

□□